भाग १०

अमृतवाणी

पदों के सन्देश

स्वामी श्री अड़गड़ानन्द जी महाराज

।। ॐ नमः सद्गुरुदेवाय ।।

अमृतवाणी

सन्तों के गूढ़ पदों के सन्देश

पूज्य स्वामी श्री अड़गड़ानन्दजी महाराज के
मुखारविन्द से निःसृत अमृतवाणियों का संकलन

भाग- 10

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट
न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं- 5 व 11, मोगरा लेन (रेलवे सब-वे के पास)
अंधेरी (पूर्व), मुम्बई - 400069, भारत

प्रकाशक :

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्दजी आश्रम ट्रस्ट

न्यू अपोलो इस्टेट, गाला नं– 5 व 11, मोगरा लेन (रेलवे सब-वे के पास)
अंधेरी (पूर्व), मुम्बई – 400069, भारत
दूरभाष– 022-28255300
ई-मेल – contact@yatharthgeeta.com
वेबसाइट – www.yatharthgeeta.com

© लेखक

अनन्तश्री विभूषित,

योगिराज, युग पितामह

परमपूज्य श्री स्वामी परमानन्द जी

श्री परमहंस आश्रम अनुसुइया-चित्रकूट

के परम पावन चरणों में

सादर समर्पित

अन्तस्प्रेरणा

गुरु-वन्दना

॥ ॐ श्री सद्‌गुरुदेव भगवान् की जय ॥

जय सद्‌गुरुदेवं, परमानन्दं, अमर शरीरं अविकारी।
निर्गुण निर्मूलं, धरि स्थूलं, काटन शूलं भवभारी।।

सूरत निज सोहं, कलिमल खोहं, जनमन मोहन छविभारी।
अमरापुर वासी, सब सुख राशी, सदा एकरस निर्विकारी।।

अनुभव गम्भीरा, मति के धीरा, अलख फकीरा अवतारी।
योगी अद्वेष्टा, त्रिकाल द्रष्टा, केवल पद आनन्दकारी।।

चित्रकूटहिं आयो, अद्वैत लखायो, अनुसुइया आसन मारी।
श्री परमहंस स्वामी, अन्तर्यामी, हैं बड़नामी संसारी।।

हंसन हितकारी, जग पगुधारी, गर्व प्रहारी उपकारी।
सत्-पंथ चलायो, भरम मिटायो, रूप लखायो करतारी।।

यह शिष्य है तेरो, करत निहोरो, मोपर हेरो प्रणधारी।
जय सद्‌गुरु.........भारी।।

॥ ॐ ॥

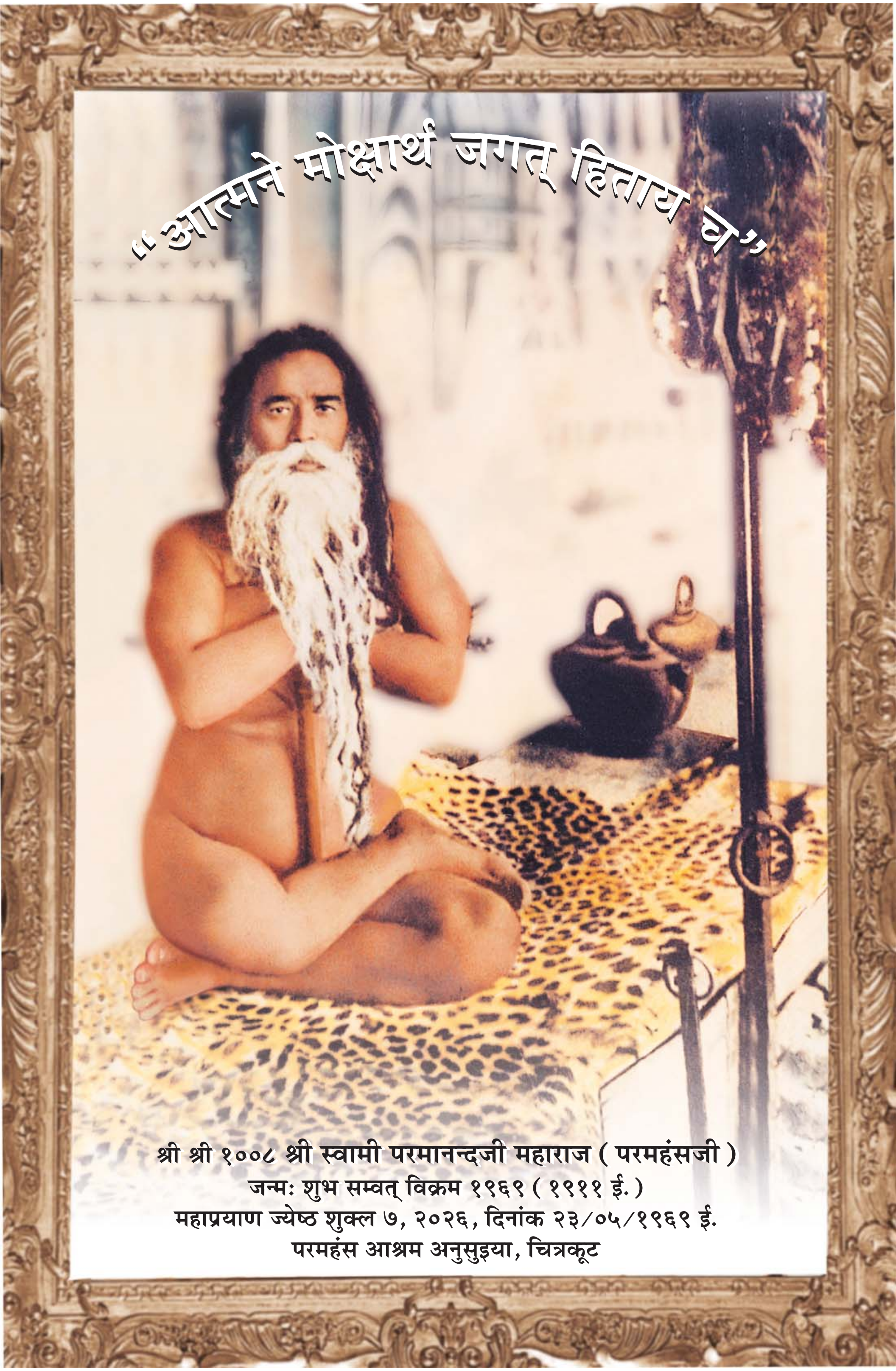

श्री श्री १००८ श्री स्वामी परमानन्दजी महाराज (परमहंसजी)
जन्मः शुभ सम्वत् विक्रम १९६९ (१९११ ई.)
महाप्रयाण ज्येष्ठ शुक्ल ७, २०२६, दिनांक २३/०५/१९६९ ई.
परमहंस आश्रम अनुसुइया, चित्रकूट

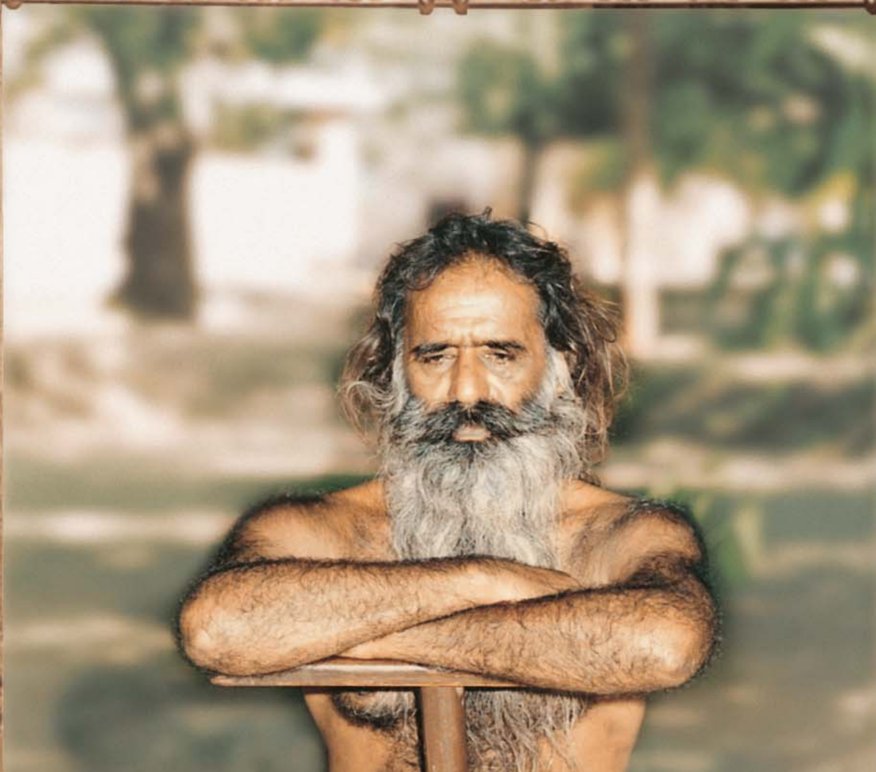

श्री स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज

(परमहंस महाराज का कृपा प्रसाद)

निवेदन

सारा संसार सुख की तलाश में रात-दिन दौड़-धूप कर रहा है लेकिन सुख मिलेगा कहाँ से! क्योंकि इस संसार को महापुरुषों ने 'दुःखालयम् अशाश्वतम्' कहा है। यहाँ दुःख की खान है। जैसे कोयले की खान में अच्छे-बुरे किस्म का कोयला ही मिलेगा, सोना नहीं, इसी प्रकार इस संसार में दुःख ही है, सुख कदापि नहीं। वास्तव में सुख मात्र एक ईश्वर की शरण में है– **'राम बिमुख सुख सपनेहुँ नाहीं।'** सुख मात्र हरि और हरि के भजन में है।

भगवान शिव माता पार्वती से कहते हैं कि हे पार्वती! मैं अपना निजी अनुभव कहता हूँ– **'उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना।।'** (मानस, 3/38/5)– सत्य हरि है, और हरि का भजन। सारा संसार स्वप्नवत् है। इसी आशय को सृष्टि के सारे महापुरुषों ने स्पष्ट कहा है, सभी महापुरुषों ने एक ही धर्म बताया है– **'एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।।'** (मानस, 3/4/10)। शाश्वत एकमात्र परमात्मा है। उस परमात्मा को प्राप्त कराने वाली नियत विधि - गीतोक्त यज्ञार्थ कर्म - का आचरण ही धर्माचरण है। परमात्मा ही सत्य है, शाश्वत है, अजर, अमर, अपरिवर्तनशील और सनातन है, मन और इन्द्रियों से परे है। **'अबिगत गोतीतं'** (मानस, 1/185 छन्द)– वह परमात्मा अचिन्त्य और अगोचर है, चित्त की तरंगों से परे है। अब चित्त का निरोध कैसे हो? चित्त को निरोध करके उस परमात्मा को पाने की विधि-विशेष का नाम कर्म है। इस कर्म को कार्यरूप देना ही धर्म है, साधक का दायित्व है।

महापुरुषों ने संसार में फैले हुए कुरीतियों, अन्धविश्वास, देवी-देवताओं की पूजा आदि मिथ्या आडम्बर को दूर करते हुए साधन के प्रमुख अंगों पर जोर दिया कि पहला– एक परमात्मा के नाम का सुमिरन, दूसरा ध्यान– ध्यान महापुरुष का धरना है, तीसरी है– ब्रह्मविद्या, अध्यात्म अर्थात् आत्मा के आधिपत्य में चलना (गीता, 13/11)। इन्हीं साधन को करते हुए साधक

परमात्मा के कुछ रहस्यों को उद्‌घाटित कर पाता है। परमात्मा के ध्यान में मिलने वाली अनुभूति का चित्रण महापुरुषों ने गद्य/पद्य या भजन, कविता के माध्यम से किया है। इस पुस्तिका में (1) **'सद्‌गुरु सोइ दया करि दीन्हा, ताते अनचिन्हार मैं चीन्हा।'-** सद्‌गुरु ने दया करके दे दिया। क्या दिया? जो परमात्मा अचिन्त्य है, अगोचर है, उसे ही चिन्हवा दिया, दिखा दिया। (2) **'मन को जीत लेहुँ मेरे भाई'-** अरे भाई मन को जीतो। **'शील का झिलम, दया का बख्तर, सत्य की टोप लगाई'-** शील का झीलम अर्थात् साधुता के गुणधर्मों का सध जाना ही शील है। दया का बख्तर, वस्त्र पहन लो, दयार्द्र बनो, और सत्य की टोप अर्थात् मन-मस्तिष्क में सत्य को धारण करो। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजी का भजन है– (3) **'राम जपु राम जपु जिय सदा सानुराग रे'-** अनुरागपूरित हृदय से भगवान का नाम जपो, नहीं तो न वैराग्य पार लगेगा, न जप, न तप ही पार लगेगा। मात्र नाम का ही एक आधार है।

भगवान श्रीकृष्ण मथुरा चले गये, उनके वियोग में गोपियाँ रात-दिन रमण रेती में भगवान के विरह में डूबी रहती थीं। साधक को भजन-चिंतन की प्रेरणा देता महात्मा सूरदासजी का भजन है– (4) **'कहत कोऊ परदेसी की बात।'** (5) **'मन तुम नाहक धुन्ध मचाये।'**- ऐ मन! तू नाहक धुन्ध (द्वन्द्व) मचाये पड़ा है। संसार की कुरीतियों को छोड़कर परमात्मा में मन लगाने का संदेश इस भजन में है। (6) **'केशव कहि न जाइ का कहिये'**- हे भगवन्! कहा ही नहीं जा सकता, क्या कहें! आपकी रचना बड़ी ही विलक्षण है। इसी प्रकार इस पुस्तिका में संतों के पदों यथा– (7) **'रघुपति भगति करत कठिनाई'**, (8) **'सुने री मैंने निर्बल के बल राम'**, (9) **'जिन डारे हैं करम सब खोय'**, (10) **'जियरा तुम जइहो हम जानी'** को उद्देश्य बनाकर संसार में सोये-अचेत लोगों को जागृत करने, सबके परम श्रेय में सहायक साधनात्मक विचारों को प्रस्तुत किया गया है। आशा है, इसे पढ़कर लोग अपने गन्तव्य तक का पथ साधना के द्वारा प्राप्त करेंगे।

– प्रकाशक

अनुक्रमणिका

क्रम	*विषय*	*पृष्ठ संख्या*
1.	सद्‌गुरु सोइ दया करि दीन्हा	1-12
2.	मन को जीत लेहुँ मेरे भाई	13-28
3.	राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे	29-44
4.	कहत कोऊ परदेसी की बात	45-56
5.	मन तुम नाहक धुन्ध मचाये	57-67
6.	केशव कहि न जाई का कहिये	68-85
7.	रघुपति भगति करत कठिनाई	86-114
8.	सुने री मैंने निर्बल के बल राम	115-136
9.	जिन डारे हैं करम सब खोय	137-148
10.	जियरा तुम जइहो हम जानी	149-160

॥ ॐ ॥

सद्‌गुरु सोई दया करि दीन्हा

ॐ जय गुरुदेवम्‌ जय गुरुदेव!
ॐ अशरण शरण शरण प्रभु लेव,
ॐ जय गुरुदेवम्‌ जय गुरुदेव!

राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।।

(मानस, 1/165/6)

गुर कें बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।।

(मानस, 1/79/8)

कबीर वे नर अन्ध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर।।

!! बोलिए श्री सद्‌गुरुदेव भगवान की जय!!

सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद।।
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा।।

(मानस, 7/121/12-13)

शिव, ब्रह्मा, विष्णु, सनकादि ऋषि (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, जो आदि ऋषि हुए हैं, वही चार प्रथम मानव जन्मे थे), सप्तऋषि, नारद, शुकदेव, व्यास, अनन्त काल से जो महापुरुष होते आये हैं, सबका मत एक– **'करिअ राम पद पंकज नेहा।'**– राम - एक परमात्मा के चरण-कमलों में प्रीति। बस इतना ही धर्म है और कोई धर्म नहीं है।

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी।।
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित बिग्यानी।।

(मानस, 7/123/5-6)

साधक, सिद्ध, जीवन्मुक्त, उदासीन, कवि, विद्वान, कर्म के ज्ञाता, संन्यासी, योगी, शूरवीर, बड़े तपस्वी, ज्ञानी, धर्मपरायण, पंडित और विज्ञानी, ये कोई भी

तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी।।

(मानस, 7/123/7)

बगैर मेरे स्वामी राम का भजन किये बिना कोई तर ही नहीं सकता।

सरन गएँ मो से अघ रासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी।।

(मानस, 7/123/7)

जिनके शरण जाने पर मुझ जैसे पाप राशि भी शुद्ध हो जाते हैं, उन अविनाशी परम प्रभु को मैं तुलसी नमन करता हूँ।

लेकिन वह विधि जब मिलेगी तो सद्‌गुरु से। इसलिए भजन एक जागृति है, वह न कहने से आती है और न लिखने में आती है। जो अगोचर है, इन्द्रियों से परे, बुद्धि से परे, मन से परे है, वाणी का विषय नहीं, अनिर्वचनीय है, न वह लिखने में आता है, न वाणी से कहने में आता है। वह अनुभवगम्य है। भगवान आपमें दृष्टि बनकर खड़े हो जायें, सामने स्वयं खड़े हो जायें तब वह देखने में आता है। अर्जुन बचपन से भगवान श्रीकृष्ण के साथ में था, किन्तु समझ में तब आया जब भगवान ने दृष्टि दे दी, तब देखा कि भगवान कितने महान् हैं। पहले सोचता था, कदाचित् धनुर्वेद में मैं ही तेज हूँ, हाँ, भगवान बुद्धि के थोड़े चपल हैं। जब समझा तो क्षुद्र त्रुटियों के लिए क्षमा याचना करने लगा– हे प्रभो! कभी आपको हमने 'हे यादव', 'हे कृष्ण', 'हे सखा' कहा, प्रभो! उन त्रुटियों के लिए पिता जैसे प्रिय पुत्र का अपराध क्षमा करता है, सखा सखा के अपराध को क्षमा करता है, पति पत्नी के अपराध को क्षमा करता है, वैसे ही आप मुझे क्षमा कर दें।

श्रीकृष्ण काले थे ही, कहाँ से गौर वर्ण कह दे! यादव के घर में तो जन्म ही हुआ था, कहाँ से शुक्लाजी कह दें! यह कोई अपराध ही नहीं था। भगवान ने आगे बढ़कर अर्जुन को सखा बनाया तो 'सखा' कहना भी कोई

खास अपराध नहीं था। लेकिन वास्तविक स्वरूप जब अर्जुन ने देखा कि– न काले हैं न गोरे हैं, यह रंग-रूप से परे हैं। न जाति है न वर्ण हैं, यह तो अलौकिक सत्ता हैं। इनके समान सृष्टि में कोई नहीं तो सखा किस बात का! सखा तो एक बराबर का पद होता है। तब क्षुद्र त्रुटियों के लिए क्षमा याचना करने लगा। इसलिए भगवान **'अन-चिन्हार'**। यह तब मिलता है जब सद्‌गुरु कृपा कर दें। इसी आशय का यह भजन है–

सतगुरु सोई दया करि दीन्हा।
ताते अन-चिन्हार मैं चीन्हा।।

बिन पग चलना बिन पर उड़ना, बिना चूँच का चुगना।
बिन नैनन का देखन-पेखन, बिन सरवन का सुनना।।
सतगुरु सोई दया करि दीन्हा।

चंद न सूर्य दिवस नहिं रजनी, तहाँ सुरत लौ लाई।
बिना अन्न अमृत रस भोजन, बिन जल तृषा बुझाई।।
सतगुरु सोई दया करि दीन्हा।

जहाँ हरष तहाँ पूरन सुख है, यह सुख कासो कहना।
कहैं कबीर बल बल सतगुरु की, धन्न सिष्य का लहना।।
सतगुरु सोई दया करि दीन्हा।

- - - - -

सतगुरु सोई दया करि दीन्हा।
ताते अन-चिन्हार मैं चीन्हा।।

सद्‌गुरु ने वह वस्तु (दृष्टि) दया करके हमें दे दिया। कौन-सी दृष्टि दे दी? **'ताते अन-चिन्हार मैं चीन्हा'**। वह जो अनिवर्चनीय है, वाणी का विषय नहीं है, मन से परे, इन्द्रियों से परे, बुद्धि से परे है इसलिए **'अन-चिन्हार'**। वह अगोचर है, अचिन्त्य है, भौतिक नेत्रों से तो पकड़ में आनेवाला नहीं। जो चीन्हने में नहीं आता, उसको हमने पहचान लिया। वह है कैसा?

बिन पग चलना बिन पर उड़ना, बिना चूँच का चुगना।
बिन नैनन का देखन-पेखन, बिन सरवन का सुनना।।
सतगुरु सोई दया करि दीन्हा।

बिना पग के चलता है। बिना पर (पंख) के सर्वत्र आसमान में गतिशील है, व्याप्त है। चोंच है ही नहीं, सर्वत्र खाना खाता है। बिन नैनन के सर्वत्र देखता है, सर्वत्र परखता है। बिना कानों के सुनता है।– ऐसा हमने देखा। अर्जुन को जब दृष्टि मिली, सर्वत्र दिखाई पड़े, बोला– प्रभो! सर्वत्र हाथ-पैर-मुख-वाला मैं आपको प्रत्यक्ष देखता हूँ।

मानस में आया है– माता पार्वती ने भोलेनाथ से पूछा– राम कौन हैं?

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा।।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।

(मानस, 1/117/4-8)

बगैर पैर के चलता है, बगैर कानों के सुनता है, बगैर हाथों के कार्य करता है, बगैर शरीर के स्पर्श करता है.... हर तरीके से अलौकिक करनी। लोक में जो घटित होता है, वह है ही नहीं। जिसको इस प्रकार **'वेद'** और **'बुध'**– प्रत्यक्षदर्शी महापुरुष लोग वर्णन करते हैं,

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान।।

(मानस, 1/118)

दसों इन्द्रियों के निरोध के पश्चात् जब लौ लगती है तो हृदय के अन्तराल में भक्तिरूपी कौशल्या के गोद में उस प्रभु का, भगवान का प्रादुर्भाव होता है। मुनि लोग उसका ध्यान धरते हैं। वह ध्यान से धरने में आता है। और भगवान के यहाँ–

चंद न सूर्य दिवस नहिं रजनी, तहाँ सुरत लौ लाई।
बिना अन्न अमृत रस भोजन, बिन जल तृषा बुझाई।।
सतगुरु सोई दया करि दीन्हा।
ताते अन-चिन्हार मैं चीन्हा।।

वहाँ ये चन्द्रमा, ये सूर्य, दिन-रात नहीं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– वह परमात्मा कैसा है?

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्‌गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। (गीता, 15/6)

अर्जुन! उस सहज प्रकाशस्वरूप परमात्मा को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा, न अग्नि ही। **'चन्द्र न सूर्य दिवस नहीं रजनी'**– वहाँ दिन नहीं, रात नहीं होता। उस ज्योतिर्मय परमात्मा में हमने सुरत को लगा लिया, हमारी लौ लग गयी। मन की दृष्टि का नाम सुरत है। हमारी सुरत वहाँ स्थिर हो गयी।

बिना अन्न अमृत रस भोजन, बिन जल तृषा बुझाई।।

भोजन है ही नहीं, अन्न है ही नहीं, **'अमृत रस भोजन'**।

सृष्टि मरणधर्मा है।

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा।।

(मानस, 7/93/7)

चराचर जगत, नाग, नर और देवता भी सब काल का कलेवा है। पेटभर भोजन नहीं है, कलेवा अर्थात् सुबह नाश्ते में थोड़ा-बहुत जो खा लेते हो बस उतना ही है। काल दोपहर को फिर भूखा का भूखा, उसको फिर पेटभर भोजन चाहिए।

अंड कटाह अमित लय कारी। कालु सदा दुरतिक्रम भारी।।

(मानस, 7/93/8)

अनन्त ब्रह्माण्डों को उदरस्थ कर लेनेवाला काल बड़ा दुर्दान्त है। वह

काल भी जिसे नहीं खा सकता वह हैं एकमात्र परमात्मा। अर्जुन! आत्मा ही अमृत तत्त्व है जहाँ मृत्यु का समावेश नहीं है। वह सर्वत्र चलता है, सर्वत्र सुनता है, सर्वत्र गतिशील है। इस आत्मा का भोजन तो परमतत्त्व परमात्मा ही है, खाद्य पदार्थ नहीं– **'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्।'** (तैत्तिरीयोपनिषद्)।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन! सृष्टि मरणधर्मा है। काल पाकर विधाता भी लोकसमेत मृत्यु को प्राप्त हो जाता है किन्तु मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। केवल एक आत्मा ही अमृत तत्त्व है, शाश्वत सत्य है। उसे शस्त्र नहीं काट सकते, अग्नि नहीं जला सकती। वहाँ मृत्यु का समावेश नहीं। आत्मदर्शन और उसके साथ मिलनेवाली अनुभूति अमृत का भोजन है। देखा ही नहीं तो कैसा अमृत!

'बिना अन्न'– वहाँ अन्न नहीं है। लेकिन आत्मा की खुराक है– आत्मदर्शन के साथ मिलनेवाली अनुभूति, दर्शन, स्पर्श और प्रवेश। **'बिना अन्न अमृत रस भोजन'**– उस अमृत अर्थात् मृत्यु से परे आत्म-साक्षात्कार के साथ मिलनेवाली जानकारी ज्ञान– यह अमृत रस भोजन। न संसार का विषयरूपी वारी है, न ब्रह्मपीयूष ही आगे बचा। जब जल ही नहीं बचा तो जीव की प्यास सदा के लिए मिट जाती है। न भगवान की जरूरत रह गयी, न माया की; न ब्रह्मपीयूष की जरूरत रह गयी, न विषयरूपी वारी ही है। आगे कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा नहीं रह गयी। तृष्णा माने प्यास, तो, **'बिन जल तृषा बुझाई।'**

जहाँ हरष तहाँ पूरन सुख है, यह सुख कासो कहना।

वहाँ केवल हर्ष है, शोक की गुंजाइश नहीं है। सदा रहनेवाली प्रफुल्लित स्थिति है, सदा रहनेवाला सुख है।

'जहाँ हरष तहाँ पूरन सुख है'– वहाँ हर्ष परिपूर्ण सुख है, **'यह सुख कासो कहना'**– यह सुख कैसा है? संसार के संयोग-वियोग से मिलनेवाला सुख कहने में आ जाता है, यह सुख वाणी का विषय नहीं है, किसी से बताया नहीं जा सकता।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

(मानस, 2/126/3)

वही जानता है जिसे भगवान जना दें। जिसको फोड़ा है तो उसका दर्द तो वही जानता है– **'घायल की गति घायल जानै, जो कोई घायल होय।'** (मीराबाई)

प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना। कहि किमि सकहिं तिन्हहि नहिं बयना॥

(मानस, 7/87/4)

आँखें जानती हैं तो उन आँखों को वाणी नहीं, कहें कैसे! तो

जहाँ हरष तहाँ पूरन सुख है, यह सुख कासो कहना।

'अमृत रस भोजन'– विषयरूपी वारि सूख गया तो ब्रह्मपीयूष ही शेष बचा। अब आगे कोई सत्ता नहीं, तृष्णा भी करेगा तो किसकी? इच्छा भी करेगा तो किसकी? वहाँ जीव की इच्छा सदा के लिए पूर्ण हो जाती है तो– **'बिन जल तृषा बुझाई'**। अब वहाँ सदा रहनेवाली शान्ति है, सुख है। **'जहाँ हरष'**– सदा रहनेवाला आह्लाद है, हर्ष है, सुख है। ऐसा सुख है किससे कहा जाय, कोई विश्वास भी नहीं करेगा, कहेंगे 'पागल है', तो **'यह सुख कासो कहना'**।

कहैं कबीर बल बल सतगुरु की, धन्न सिष्य का लहना॥

'कहैं कबीर बल बल सतगुरु की'– मैं उस सद्‌गुरु पर अपने आपको न्यौछावर करता हूँ। **'धन्न सिष्य का लहना'**– वह शिष्य भी धन्य है जो गुरु के चरणों में समर्पित होकर इस वस्तु को प्राप्त कर लिया, लहा ले गया। **'धन्न सिष्य का लहना'**– लहना माने प्राप्त करना। ऐसा सुख जिसके पीछे दुःख नहीं।

'कहै कबीर बल बल सद्‌गुरु की'– जो ये स्थिति प्रदान कर दे। वह शिष्य भी धन्य है जिसने इस वस्तु को प्राप्त कर लिया, ग्रहण कर लिया, 'लहना' माने ग्रहण करना। **'धन्य शिष्य का लहना'**– सधुक्कड़ी भाषा में,

जो लहा ले गया। तो-

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया।।

(मानस, 3/14/2)

'मैं हूँ, मेरा है', 'तू है, तेरा है'–बस इसी का नाम माया है, चराचर जीव-जगत को इसने पराधीन कर रखा है।

तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ।।

(मानस, 3/14/4)

इस माया के भेद दो हैं– विद्या और अविद्या। माया के दो रूप हैं– एक का नाम विद्या, एक का नाम अविद्या।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा।।

(मानस, 3/14/5)

एक अविद्या अत्यन्त दुष्ट है जिससे भयभीत होकर जीव भवकूप में पड़ा है।

एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें।।

(मानस, 3/14/6)

दूसरी है विद्या, जिसके बस में गुण हैं। विद्या उसे कहते हैं जिसके बस में गुण हैं, सत-रज-तम तीनों गुणों को नियन्त्रण करने की क्षमता रखती है, लेकिन वह विद्या प्रभुप्रेरित है। विद्या में अपना कोई बल नहीं। प्रभु आपके हृदय में प्रेरक के रूप में खड़े हो जाये, रोकथाम करने लगे, चलाने लगे, उनके निर्देशन में जो कार्य होता है उसका नाम विद्या है। विद्या एक जागृति है, और विद्या हरिप्रेरित है। तो–

नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदयँ राम माया के प्रेरे।।

(मानस, 7/103/1)

कलयुग अब है, सतयुग कभी था, कभी त्रेता रहा होगा– ऐसी बात नहीं है। इन युगधर्मों का उतार-चढ़ाव सबके हृदय में रोज, नित्य होता रहता है। **'हृदयँ राम माया के प्रेरे।'**– जब प्रभु प्रेरक के रूप में खड़े हो जाये,

उठाये, बैठाये, चलाये, मार्गदर्शन करें, इसी का नाम राम माया है। प्रभु, राम एक ही हैं न! तो प्रभु जब प्रेरणा करें, उनके द्वारा साधक चलता रहे, बढ़ता रहे। तामसी गुण का दबाव है तो भगवान उसी स्तर से साधना का क्रम बतायेंगे। साधक चलते-चलते तामसी गुण पार कर ले जायेगा तो राजसी गुण के प्रभाव पर भगवान उसी स्तर से बतायेंगे। साधक चलता रहेगा, उनके निर्देशन में राजसी गुण भी पार कर ले जायेगा। सात्विक गुण के कार्यकाल में साधना पहुँच जायेगी तो उसी स्तर से बतायेंगे। साधक उसको भी पार कर ले जायेगा, एक दिन वह गुणातीत हो जायेगा।

तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा।।

(मानस, 7/103/5)

हृदय में तामसी गुण की बहुतायत है, राजसी गुण मामूली और सात्विक गुण है ही नहीं, तब फिर वह कलियुगीन है। कलियुगीन हैं, मनुष्य हम जन्मे हैं, भजन कैसे होगा? केवल भजन का एक तरीका बचा–

कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा।।

(मानस, 7/102/4)

गुणगान करो। क्योंकि-

श्वांसों का क्या भरोसा रुक जाये कब कहाँ पर।
कर जाओ काम ऐसा, हो शान इस जहाँ पर।।

भजन-कीर्तन करो। प्रभु ऐसे थे, भगवान ऐसे थे, भगवान ने ये किया– ये भी भजन है। कलियुगीन स्थिति पर मन नहीं लगता, क्योंकि तामसी गुण का बाहुल्य है, सतत गुणगान करने से वह भजन है, शनैः-शनैः तामसी गुण का दबाव हट जायेगा।

बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस।।

(मानस, 7/103/4)

राजसी गुण की बहुतायत हो गयी.... पहले तामसी बहुत था, थोड़ा-सा राजसी था, सात्विक था ही नहीं; अब राजसी बहुत हो गया, थोड़ा तामसी

बचा है, कुछ सात्विक का सम्पुट लग गया–

बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस।।

वह द्वापरयुगीन है, मन में कभी हर्ष रहेगा, कभी भय रहेगा। उस समय भजन का स्तर कैसा होता है?

द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा।।

(मानस, 7/102/3)

उस समय पद-पूजा, गुणानुवाद दोनों चलता है।

सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा।।

(मानस, 7/103/3)

तामसी है ही नहीं, सात्विक गुण की बहुतायत है, कुछ राजसी गुण का सम्पुट है, तामसी नदारद, है ही नहीं, हर तरीके से सुख है–ये त्रेतायुगीन पुरुष के लक्षण हैं। और ये हरिप्रेरित चल रही है। भगवान जैसा आदेश दें, वैसा भजन करो। उस समय भजन का स्तर क्या होता है?

त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं।।

(मानस, 7/102/2)

बहुत से योगी लोग स्वांस को प्रस्वांस में हवन करते हैं, प्रस्वांस को स्वांस में हवन करते हैं, बहुत से योगी लोग '**प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः**' (गीता, 4/29)– स्वांस-प्रस्वांस की गति को रोककर प्राणायाम के परायण हो जाते हैं। योगाग्नि, ज्ञानाग्नि, संयमाग्नि... आग तो जल नहीं रही है। अग्नि में डालने से हर वस्तु भस्मसात् हो जाती है। ज्ञान एक ऐसी अग्नि है, संसार के शुभाशुभ कर्म-संस्कार दग्ध हो जाते हैं और आदमी का मन एकदम निर्मल हो जाता है, इसलिए अग्नि की संज्ञा दी गयी है।

गीता के अनुसार यज्ञ योगसाधना विधि का नाम है; और उसे कार्यरूप देना, कार्यान्वित करना ही कर्म है। और बाहर अग्नि जलाना, धुँआ करना- ये

तो प्राईमरी शिक्षा है। वह यज्ञ नहीं है। वह तो ककहरा पढ़ाई है। लड़का पढ़ना नहीं जानता तो 'क माने कबूतर', 'ख माने खरहा'.... ऐसे ही है। सारी साधना-पद्धति उसमें प्रवाहमान रहती है। स्वांस-प्रस्वांस का यजन पूर्ण है, धारणा, ध्यान, समाधि की साधना भली प्रकार चल रही है, जागृत है, केवल सात्विक गुण रह गया-

सुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥

(मानस, 7/103/2)

शुद्ध सत्व गुण है, तामसी-राजसी गुण जैसे था ही नहीं, विषमता खत्म, सर्वत्र **'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्'** (ईशावास्योपनिषद्, 1)– ईश्वर का वास दिखाई देता है उस समय वह सतयुगीन पुरुष है। उस समय साधना का स्तर कैसा होता है? बगैर लगाये मन लग जायेगा।

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥

(मानस, 7/102/1)

जहाँ सात्विक गुण मात्र शेष है उस समय वह योगी होता है। बुद्धि से कोई काम नहीं लेता। भगवान चाहते क्या?, कहते क्या?, वह समझता जाता है, करता जाता है। बुद्धि मात्र यंत्र है। बे-ज्ञान का ज्ञान, बे-तार का तार लग जाता है जिसका नाम विज्ञान है। अनुभवी उपलब्धि.... भगवान बतावें, बुद्धि उसको पकड़े और उसके अनुसार कार्यबद्ध करती चली जाये। भगवान के आदेश को समझें और आगे कार्यरूप दे दे, उस समय वह विज्ञानी कहलाता है।

'कृतजुग सब जोगी'– परमात्मा से मिलन का नाम योग है। योग साधना में परिपक्व, **'बिग्यानी'**– बुद्धि केवल भगवान के आदेश को पकड़ती है और उसको कार्यरूप देती जाती है। तो–

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥

सहज ही उसका ध्यान रँवा रहता है। एक बार सुरत लग गयी तो लग गया ध्यान। तो–

बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं।।

(मानस, 7/103/6)

विवेकी पुरुष युगधर्म के उतार-चढ़ाव को मन में जानते हैं। 'कभी सतयुग रहा होगा, आज नहीं है', 'आज कलयुग है कभी नहीं रहेगा'–ऐसी बात नहीं है।

नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदयँ राम माया के प्रेरे।।

(मानस, 7/103/1)

इसलिए भजन करो, सबका मन एक दिन लगेगा। तामसी गुण का दबाव है तो आज तो नहीं लगेगा। ऐसा नहीं है कि आप अधिकारी नहीं हो। गुणगान शुरु करो न, सतयुगीन जिस श्रेणी पर हैं, उसी पटरी पर आप भी हो। गुणगान भजन की आरम्भिक श्रेणी है।

।। ॐ श्रीसद्‌गुरुदेव भगवान की जय।।

मन को जीत लेहुँ मोरे भाई

ॐ जय गुरुदेवम् जय गुरुदेव!
ॐ अशरण शरण शरण प्रभु लेव,
ॐ जय गुरुदेवम् जय गुरुदेव!

सोइ सर्बग्य गुनी सोई ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।
नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना।।
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा।।

(मानस, 7/126/1-4)

- - - - -

मुहैया जिसे सब असबाब, मुल्की और माली थे।
सिकन्दर चला जब दुनिया से, दोनों हाथ खाली थे।।

सिकन्दर महान..... दुनिया का सारा ऐश्वर्य उसको सुलभ था, उपलब्ध था, मुहैया था, संसार के दुर्जय योद्धा उसके आस-पास खड़े थे, रतन-जवाहरातों की पेटियाँ थीं, लेकिन '**सिकन्दर चला जब दुनिया से तो दोनों हाथ खाली थे।**'– कुछ भी साथ नहीं गया। दोनों हाथ खाली, कुछ हाथ लगा ही नहीं।

बिगरी जनम अनेक की, सुधरै अबहीं आजु।

अनेक जन्मों का बिगड़ा हुआ अभी सुधरेगा, बिगड़ी आज सुधर जायेगी, सरल उपाय है–

होहि राम को नाम जपु, तुलसी तजि कुसमाजु।।

(तुलसी दोहावली, 22)

तुलसीदासजी कहते हैं– राम का जाप यदि पार लगे, **'तुलसी तजि कुसमाजु'**– कुसंग त्यागकर यदि प्रभु का नाम जपो तो अनेक जन्म का बिगड़ा हुआ आज, इसी क्षण सुधर जायेगा। सुधार का उपाय है– प्रभु का नामजप।

भजने को दोऊ भले, एक संत एक राम।
राम जो दाता मुक्ति के, संत जपावें नाम।।

भजने के लिए दो ही सर्वोपरि हैं– एक संत का भजन, एक राम का भजन। राम दाता हैं मोक्ष के, और संत जपावें नाम। मुक्ति की, साधना की जागृति संतों से है।

संतन मिलि निर्णय कियो, मथि पुराण इतिहास।
भजिबे को दोऊ सुघड़, कै हरि, कै हरि दास।।

संतों ने अनन्त वेद-पुराणों का मन्थन करके निर्णय दिया– भजन करने को तो दो ही भले हैं, दो ही सुघड़ हैं– या तो हरि, या हरि के दास।

मन विचि रतन जवाहर माणिक, जे इक गुर की सिख सुणी।

(गुरु ग्रंथ साहब, 6)

इस मन को कोई खोजो रे भाई, मन खोजे नवनिधि पाई।।

मन के अन्तराल में रतन है, जवाहरात है, माणिक्य है, लेकिन **'जे इक गुर की सिख सुणी'**– जो एक सद्गुरु की शिक्षा श्रवण कर ले, उस पर अमल करे। जब कभी किसी ने पाया है तो मन का निरोध करके।

इस मन को कोई खोजो रे भाई, मन खोजे नवनिधि पाई।।

इस मन की कोई शोध करो। मन की खोज जिन्होंने कर ली, उन्होंने नवनिधि, अष्टसिद्धि प्राप्त कर ली। सागर की गहराईयों में रतन है, किनारे पर घोंघे-सीपियाँ मिलेंगी। पहाड़ की गहराईयों में स्वर्ण-भण्डार भी है, हीरे भी उपलब्ध होते हैं; ऊपर तो कंकड़, गिट्टी, पत्थर हैं, और क्या होगा! मन के अंतराल में प्रवेश करो। इसी स्तर का पुरुषोत्तमदासजी का यह भजन है-

मन को जीत लेहुँ मोरे भाई॥

शील का झेलम दया का बख्तर सत्य की टोप लगाई।
धर्म के रथ पर बैठो प्यारे धीरज अश्व नधाई॥
मन को जीत लेहुँ मोरे भाई॥

भाव का बिस्तर बाँध कमर में छमा की ढाल अड़ाई।
बैराग्य खड्ग की मूठ ले कर में ज्ञान की शान धराई॥
मन को जीत लेहुँ मोरे भाई॥

काम क्रोध मद लोभ मोह की दीजै फौज भगाई।
आसा तृष्णा बिषय वासना देहु कतल करवाई॥
मन को जीत लेहुँ मोरे भाई॥

शान्ति और सन्तोष किले में घुस जा एड़ लगाई।
कह पुरुषोत्तम निर्भय हो जा मुक्ति जगीरी पाई॥
मन को जीत लेहुँ मोरे भाई॥

तुलसीदासजी के समय में वर्ण-व्यवस्था जोरों पर थी। ज्योतिषियों ने तो तुलसीदासजी को जन्मते ही फेंकवा दिया कि माँ-बाप को खा जायेगा, गाँव को खा जायेगा, अनिष्टकारी बालक है। उनके ज्योतिष में ये नहीं निकला कि डूबते हुए भारत को ये महापुरुष तुलसीदासजी बचा लेंगे। उस समय पर रामायण न आयी होती तो आप लोग न होते, क्योंकि सब उपदेश उस संस्कृत भाषा में करते थे जिसका ज्ञान मनुष्य को था ही नहीं। सामान्य हिन्दू को संस्कृत पढ़ना पाप, और संस्कृत पढ़ा-लिखा उपदेश कर रहा है! हमें समझ में नहीं आता, धोखा क्यों दिए? अब सब पढ़े-लिखे हो गये। जब से आपकी गीता गई है, सब पढ़ रहे हैं। संस्कृत से सरल भाषा दुनिया में कोई नहीं। इस पर पर्दा डालने से ये खो गई थी, अब बच्चा-बच्चा पढ़ रहा है। उस समय सबको संस्कृत पढ़ने का अधिकार था ही नहीं; धर्मग्रन्थों की और कोई भाषा थी ही नहीं। तुलसीदासजी ने इस कमी को समझा, उस भाषा में रामायण लिख दिया जो सबकी बोलचाल की भाषा थी, हिन्दू बच गया।

उत्तरकाण्ड उत्तर है, सभी प्रश्नों का सम्पूर्ण समाधान है। अन्त में समाधान करते हुए गोस्वामीजी ने कहा कि– इसमें धार्मिक कौन? तो–

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।

(मानस, 7/126/1)

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा।।

(मानस, 7/95/2)

वह सर्वज्ञ है, गुणी है, ज्ञाता है, महिमा मण्डित है, पण्डित है, दानदाता है, वही पवित्र है, सुन्दर शरीरवाला है जो दुर्लभ मानव तन पाकर भगवान का भजन करता है। वह परम पवित्र है।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना।।

(मानस, 7/126/3)

वह नीति में निपुण है, वह परम सयाना है, श्रुतियों का सिद्धान्त अच्छी प्रकार से उसने जाना है।

दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई।।

(मानस, 7/48/8)

वह क्रिया में दक्ष है, सारे लक्षणों से युक्त है। कौन? जिसकी उन परम प्रभु के चरणों में प्रीति हो।

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत।। (मानस, 7/127)

हे पार्वती! वह सारा का सारा कुल कृतार्थ है, धार्मिक है जिस कुल में किसी एक का राम - उन परम प्रभु - के चरणों में प्रीति हो गयी हो। बस इतना ही तो कुल धर्म है। लेकिन भगवान को छोड़कर भारत सबका पुजारी है। सबकी पूजा का आदेश है, भगवान की पूजा निषेध। बात कड़वी है, हम करें क्या, लिखित तो वही मिल रहा है। लिखित आदेश है कि ब्राह्मण सरस्वती की पूजा करे, भगवान की नहीं। वैश्य लक्ष्मी की पूजा करे, आदेश तो नहीं है भगवान की पूजा करने का। क्षत्रिय दुर्गा की पूजा करे, शूद्र वनदेवी, भूत-

भवानी जो धक्का में मिल जाये, पूजा करे। चार भागों में बँटा हुआ हिन्दू, चारों की चार देवियाँ अलग-अलग। और भगवान के लिए तो जगह ही नहीं बची! सोमवार को शंकरजी को जल दो, मंगल को हनुमानजी, बुधवार को बुद्धिदाता गणेशजी, गुरुवार को गुरु-दर्शन, शुक्रवार को सन्तोषी माई, शनिवार को शनि दर्शन, रविवार को सूर्य को जल दो....। सात दिन ही हैं, सातों अलग-अलग देवताओं के लिए। भगवान के लिए तो दिन ही नहीं बचा। क्या बवाल है? तुलसीदासजी कहते हैं–

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान।। (मानस, 7/78 क)

राम - एक परम प्रभु - के भजन के बिना जो कल्याण चाहता है वह बगैर सींग-पूँछ का पशु है, उसमें और बैल में कोई फर्क नहीं। लेकिन हमारी कुछ परम्परायें हैं, इस परम्परा में सीताजी भी थीं। जनकपुर में सीताजी को उनकी माता सुनैनाजी ने कहा– जाओ बेटी, बगीचा में देवी की पूजा कर आओ– '**गिरिजा पूजन जननि पठाई।** (मानस, 1/227/2)'

जब स्वयंवर का समय हुआ, जब माता सीता ने स्वयंवर-भूमि में चरण रखा और रामजी को देखा तो नई खिली हुई पुष्प कली के समान कोमल शरीर!

तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही।।
(मानस, 1/256/4)

तब सीताजी भयभीत हृदय से देवता मनाने लगीं। '**जेहि तेही**'– झटके में जो याद आ गया हो। हे भैरव बाबा! हे विष्णु! हे ब्रह्मबाबा! हे संकटमोचन!.... '**जेहि तेही**' मतलब जो याद आ जाय। जब आदमी घबरा जाता है तो चारो तरफ दौड़ने लगता है, शायद वो सहायता कर दे।

मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी।।
(मानस, 2/256/5)

मन ही मन अकुलाकर शंकर और पार्वती की शरण चली गयीं– हे शंकजी! हे पार्वतीजी! आज तक हमने आपकी जो पूजा किया– '**आजु लगें**

कीन्हिउँ तुअ सेवा।' (मानस, 1/256/7), उसका फल कृपया दे दें।

करहु सुफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई।।

(मानस, 1/256/6)

मेरा हित सधता दिखाई पड़े, प्रभो! रामजी की उँगलियाँ धनुष का स्पर्श करती दिखाई पड़े तब चाप को हल्का कर देना। अभी हल्का कर दोगे तो कोई अयोग्य जाकर तोड़ देगा तो क्या होगा!

जब कोई सफलता की उम्मीद नहीं दिखाई पड़ी तो गणेशजी की तरफ घूम गईं–

गननायक बरदायक देवा। आजु लगें कीन्हिउँ तुअ सेवा।।
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी।।

(मानस, 1/256/7-8)

हे गणों के नायक! वर देने में प्रवीण हे गणेशजी! बार-बार मेरी विनती सुनकर चाप को हल्का कर दें जब मेरा हित सधता दिखाई पड़े।

फिर भी सफलता नहीं समझ में आई तब तैंतीस करोड़ देवताओं को सामूहिक मना लिया–

देखि देखि रघूबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर।। (मानस, 1/257)

भगवान का कोमल शरीर देखकर कि कोमल शरीरवाले क्या खाक तोड़ेंगे! ये विशाल भुजदण्डवाले राजा-महाराजा तो धनुष पकड़कर गिर पड़ रहे हैं, ये तो खिली कली के समान कोमल शरीरवाले!! प्रेमाश्रु छलक आये, शरीर रोमाञ्च हो गया लेकिन सफलता के आसार नहीं दिखाई पड़े तब सीताजी घूम गयीं उन प्रभु की ओर, आरम्भ से ही जिनकी शरण जाना चाहिए था–

तन मन बचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा।।
तौ भगवानु सकल उरबासी। करिहि मोहि रघुबर कै दासी।।

(मानस, 1/258/4-5)

मन-क्रम-वचन से मेरा प्रण सत्य है, श्रीरघुवीर के चरणों में मेरा मन अनुरक्त है तो भगवान!... कौन भगवान? पशुपतिनाथ नहीं, द्वारिकाधीश नहीं, **'सकल उरबासी'**– सबके घट-घट में वास करनेवाले प्रभु मुझे रामजी की दासी बना दें।

प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना।।

(मानस, 1/258/7)

जिस क्षण हृदयस्थ ईश्वर की शरण गयीं, कृपानिधान राम सब जान गये कि अब ये मुझे पुकार रही है।

तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा।।

(मानस, 1/260/8)

जिस क्षण हृदयस्थ ईश्वर की शरण गयी, क्षण मध्य, आधा क्षण में भगवान राम ने धनुष को मध्य से दो भागों में तोड़ दिया। धनुष टूट गया, जयमाला पड़ गयी, सीता का दुःख दूर हो गया। सफलता मिली तो हृदयस्थ ईश्वर की शरण जाने पर।

गोस्वामीजी मानस के प्रारम्भ में मंगलाचरण में ही कहते हैं–

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।।

मैं भवानी और शंकर की वन्दना करता हूँ, उनकी कृपा के बिना सिद्धजन भी हृदयस्थ ईश्वर को नहीं पहचान पाते। मानस के अनुसार भगवान का निवास हृदय में। सीता तैंतीस करोड़ देवताओं में चक्कर मारती रही, आँसू नहीं थमे। सफलता मिली तो **'तौ भगवानु सकल उरबासी'** की शरण जाने पर। मानस के अनुसार ईश्वर हृदय में– **'भगवानु सकल उरबासी'**।

भजन किसका करें? तो, **'ब्यापकु एक ब्रह्म अबिनासी।'**– कण-कण में व्याप्त है, एक है, बृहद है इसलिए ब्रह्म है, अविनाशी है। **'सत चेतन घन आनँद रासी।** (मानस, 1/22/6)'– वह सत्य है, चेतन है, असीम आनन्द

की राशि है। वह भगवान मिलेंगे कहाँ? पशुपतिनाथ में, रामेश्वरम् में, द्वारिकाधीश में, मक्का-मदीना में, येरूशलम में, बद्रीनाथ में? आखिर कहाँ मिलेंगे भगवान? हम ढूँढ़ने कहाँ जायें?

अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥

(मानस, 1/22/7)

वह प्रभु व्यापक है, एक है, बृहद होने से ब्रह्म, अविनाशी, परम सत्य, असीम आनन्द की राशि है। ऐसा प्रभु सबके हृदय में निवास करता है।

होगा हृदय में, हमारे किस काम का?, हम उसे कैसे प्राप्त करें? एक ही सरल विधि है– नाम का जाप करो। हम ध्यान करना चाहते हैं, जब भगवान को देखा ही नहीं तो ध्यान कैसे कर लोगे? यदि ध्यान के लिए भगवान को पाना है तो नाम का जाप करो।

नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥

(मानस, 1/22/8)

नाम का निरूपन करो, नाम है किस प्रकार! क्योंकि **'राम नाम में अन्तर है, कहीं हीरा है कहीं पत्थर है'**– कहीं पत्थर-पत्थर जपकर जिन्दगी न काट ले जाये। और जब गुत्थी सुलझ जाय, परमात्मा के एक नाम का निराकरण हो जाय तब अभ्यास करो, यत्न करो, वो प्रकट हो जायेंगे। जब भगवान प्रकट हो जायें तब उनका ध्यान धर लेना।

पहले नाम, नाम से रूप, रूप मिल गया तो ध्यान, ध्यान से लीला कि भगवान कैसे कण-कण में व्याप्त हैं, कैसे सर्वत्र से देखते हैं, सुनते हैं, कैसे आपकी रक्षा करते हैं–उन विभूतियों से अवगत होना लीला कहलाता है। और जहाँ से प्रभु प्रसारण देते हैं, उन्हीं के सहारे देखते-देखते उस मूल का स्पर्श किया तो परमात्मा का परम धाम माने स्थिति पा गया।

बहुत सरल है, भगवान को जब किसी ने पाया तो हृदय में। हृदयस्थ ईश्वर का उपासक हिन्दू कहलाता है। हिन्दू की परिभाषा आज तक किसी ने दिया ही नहीं, और महापुरुषों ने छिपाकर प्रस्तुत किया इसलिए कि अधिकारी

ले ले, अनधिकारी दुरुपयोग न करें। भजन एक परमात्मा का। ये भूत-पोंगड़ा छोड़ो। इसके लिए रुकावट है मन।

मन को जीत लेहुँ मोरे भाई।

मन को जीत लो मेरे भैया!

शील का झिलम दया का बख्तर सत्य की टोप लगाई।
धर्म के रथ पर बैठो प्यारे धीरज अश्व नधाई।।

‘**शील का झिलम**’– यम, नियम, तप, स्वध्याय, धारणा, ध्यान, समाधि– साधुता के इन गुणधर्मों का सध जाना शील कहलाता है। शील का तो झिलम पहनो। जिसमें तलवार, बरछी प्रवेश न करे, लोहे के उस बख्तर का नाम झिलम है। ‘**दया का बख्तर**’– दया का वस्त्र पहन लो, क्रूर मत बनो, दयार्द्र बनो।

द्रोणाचार्य का कवच इतना अभेद्य था उसमें शस्त्र कभी प्रवेश करता ही नहीं था। एक बार दुर्योधन गुरु द्रोण के पास जाकर बहुत रोया, बोला– गुरुदेव! क्या हमारी मन की मन में ही रह जायेगी? जब भी अर्जुन से टक्कर होती है तो मैं ही धूल चाटता हूँ, कोई ऐसा उपाय नहीं है कि एक बार अर्जुन को पछाड़ सकूँ? क्या मन की मन में ही रखकर मर जाऊँगा? तब द्रोण ने कहा– अच्छा लो वत्स! मेरा कवच पहन लो।

दुर्योधन कवच पहनकर चला। अर्जुन जो बाण मारे, सब टकराकर दाहिने-बाँये। वह बिल्कुल सामने पहुँच गया, धड़ाधड़ लड़ने लगा। अब दुर्योधन के बाण अर्जुन पर कितना असर करते लेकिन कभी इधर से घेरे, कभी उधर से घेरे। तब अर्जुन ने कहा– केशव! आज दुर्योधन बड़ा निर्भीक आ रहा है! एक बाण में तो प्राण लेकर भागा करता था, आज हमने कई बाण मारे, असर नहीं हुआ। बात क्या है? श्रीकृष्ण बोले– यह आज गुरु द्रोण का कवच पहनकर आया है।

अर्जुन तो द्रोण का प्रिय शिष्य था, उस कवच की कमजोरियाँ कहाँ

हैं, उसका अध्ययन किया। जो ऊँगलियों के गावा होते है न, वहाँ कवच नहीं था, अर्जुन ने गावे में सटासट दस बाण मारा, दुर्योधन रथ लेकर भागा। तो– **'शील का झिलम'**– शत्रु का शस्त्र न काम करे, **'दया का बख्तर'**– जब साधुता के गुणधर्म आते हैं तो दया भी सहज उभड़ आती है, उमड़ आती है। वो कभी क्रूर नहीं होते, वो दयार्द्र होते हैं, दया उनका सहज स्वभाव होता है।

'सत्य का टोप लगाई'

टोपी सिर में पहनते हैं; और सिर में तो छल-कपट भरा हुआ है। पता नहीं किसके मस्तिष्क में किस चीज की टोपी भरी हुई है, क्या बात चल रहा है? सब हटाओ, केवल सत्य की टोपी पहन लो। भगवान क्या है?, कहाँ रहते हैं?, कैसे भजन करें?–केवल चिन्तनधारा प्रवाहमान हो जाय तो आपने टोपी पहन लिया। और–

धर्म के रथ पर बैठो प्यारे, धीरज अश्व नधाई।

'धर्म के रथ पर बैठो प्यारे'– धर्म के रथ पर बैठो। कैसे बैठें? धर्म कोई रथ तो है नहीं।

विभीषण घबरा गया। कुम्भकरण, मेघनाद, अपार सेना लड़ी-मरी, नहीं घबराया लेकिन रावण को देखा तो घबरा गया। भगवान ने उसकी दशा देखी, बोले– विभीषणजी! इतनी घबराहट का कारण? तो विभीषण ने कहा– प्रभो!

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषनु भयउ अधीरा।।

(मानस, 6/79/1)

रावण रथी है, आप विरथ हैं।

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना।।

(मानस, 6/79/3)

आपके पास रथ नहीं है, पाँव में पनही नहीं है, इस दुर्जय बलवान वीर को आप कैसे जीतेंगे?

कुम्भकरण आया, विभीषण नहीं घबराया। बड़े-बड़े योद्धा आये नहीं घबराया। लेकिन साथ ही तो जन्मा था, दोनों एक ही माँ के बेटे थे, रावण के आते ही विभीषण घबरा गया। भगवान ने कहा– सखे! जिससे जय होता है वह रथ ही दूसरा है। इन लकड़ीवाले रथों से कब किसने दुनिया में विजय पाई? ये मार देते हैं, मर जाते हैं, रथ टूटते रहते हैं, पीछे के लोग उसी लकड़ी से धूना तापते रहते हैं।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।

(मानस, 6/79/5)

‘**सौरज**’ माने शौर्य। सामने कोई मिठाई थोड़े ही भेजेगा, वह भी तो वार कर रहा है! कैसा भी संकट आवे, अपना धैर्य नहीं खोना चाहिए।

सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।

‘**सत्य वस्तु है आत्मा मिथ्या जगत पसार।’...** सत्य ही ध्वजा है, उसको साधना शील, आचरण में ढालना यही पताका है।

‘**बल बिबेक दम परहित घोरे।**’– बल है विवेक का, इन्द्रियों के दमन का, परहित का। यही घोड़े हैं। ‘**छमा कृपा समता रजु जोरे।**’ (मानस, 6/79/6)– क्षमा है, कृपा है, समता है–इन रस्सियों से घोड़े जुड़े हैं।

ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।।

(मानस, 6/79/7)

ईश्वर का भजन सारथी है, सन्तोष की कृपाण है, वैराग्य की ढाल है। और,

दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा।।

(मानस, 6/79/8)

दान ही फरसा है। बुद्धि केवल साधना में प्रवृत्त रहे, साधना-पद्धति को धारण करनेवाली है, यही प्रचण्ड शक्ति है।

अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।।

(मानस, 6/79/9)

मल से रहित अचल स्थिर मन ही त्रोंण (तरकश) है, मन का शमन, इन्द्रियों का दमन (यम-नियम का संयम) ही बाण है।

कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा।।

(मानस, 6/79/10)

अभेद्य कवच, जो भेदा न जा सके– जो ब्रह्मतत्त्व स्थित है, विप्र और गुरु की पूजा– इनके समान विजय का कोई उपाय नहीं है। तो–

सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें।।

(मानस, 6/79/11)

ऐसा धर्ममय रथ जिसके पास है, उसके लिए जीतने के लिए दुनिया में शत्रु है ही नहीं। सबसे बड़ा शत्रु है संसार।

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर।। (मानस, 6/80क)

अत्यन्त दुर्जय संसाररूपी शत्रु को वह वीर जीत सकता है जिसके पास दृढ़ता के साथ ये रथ है। इतने में इन्द्र ने रथ भेजा, **'हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा।'** (मानस, 6/88/3)। जब दूसरे रथ से विजय हो ही नहीं सकती तो भगवान किस सोने-चाँदी के रथ में बैठे थे? वास्तव में इन्द्रियों की एकाग्रता के पश्चात् सारी दैवी सम्पद् हृदय में प्रवाहमान हो जाती है, इसलिए इन्द्र देवाधिदेव है। इन्द्रियों की एकाग्रता के पश्चात् जो मन का आधिपत्य है वही इन्द्र है। ऐसी एकाग्रता में रथ के अंग-प्रत्यंगों का भली प्रकार प्रवाहमान होना सम्भव है, इसलिए इन्द्र ने दिया। तो भजनवाला रथ जो विजय दिला दे, और ये धर्म-रथ है।

धर्म के रथ पर बैठो प्यारे धीरज अश्व नधाई।।
मन को जीत लेहुँ मोरे भाई।।

'धीरज'– सामने से कैसा भी आघात आवे.... दुनियावाले आघात में शरीर मरता है, शरीर फिर मिल जाता है। और इस आघात में कई जन्म का

झटका लग जाता है– **'अबकि पास न पड़े तो, फिर चौरासी जाय।'** तो सामने से जो वार आता है, उसमें धैर्य नहीं खोना चाहिए, श्रद्धा में बिखराव नहीं आना चाहिए, **'धीरज अश्व नधाई'**।

भाव माने श्रद्धा, प्रेम– **'बिना प्रेम रीझे नहीं तुलसी नन्द किसोर।'**

भाव का बिस्तर बाँध कमर में छमा की ढाल अड़ाई।

भाव का बिस्तर कमर में बाँध लो। भाव में वह क्षमता है, भगवान वश में हो जाते हैं– **'भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।'** (मानस, 7/92ख) सुख का घर हैं भगवान, करुणा की खान हैं भगवान, करुणा दृष्टि हैं भगवान, भाव के वश में है भगवान। भगवान को बस में करने का उपाय केवल भाव। भाव माने श्रद्धा, भाव माने प्रेम, तो **'भाव का बिस्तर बाँध कमर में'**। और कैसा भी आघात आवे, क्षमा कर दो– **'छमा बड़न को चाहिये छोटन को उत्पात।'**, तो **'छमा की ढाल अड़ाई'**– क्षमा की ढाल अड़ा दो, बाहरी आघात आप तक नहीं पहुँच पायेंगे।

बैराग्य खड्ग की मूठ ले कर में, ज्ञान की शान धराई।।

मन को जीत लेहुँ मोरे भाई।।

वैराग्य ही खड्ग है, उसकी मूठ को पकड़ लो। **'ज्ञान'**– भगवान कहते क्या हैं?, चाहते क्या हैं?–उसको समझो और चलते जाओ। ज्यों-ज्यों आज्ञापालन करते जाओगे, इस त्यागरूपी तलवार में सान चढ़ती जायेगी, धार पैनी होती जायेगी।

और लड़ोगे किससे? अनन्त इच्छायें, अनन्त वासनायें, अनन्त कामनायें। आजकल काम का अर्थ केवल भोग रह गया है। ये काम अथाह है। काम माने कामनायें, इच्छायें, वासनायें। काम में विघ्न पड़ा तो क्रोध, और सफलता मिल गयी तो मद कि इतना है। और फिर मोह। सफलता मिल गयी तो लोभ कि और चाहिए।

काम क्रोध मद लोभ मोह की दीजै फौज भगाई।

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला।।

(मानस, 7/120/29)

सम्पूर्ण व्याधियों का मूल उद्गम मोह है। इनकी फौज को भगा दो। इस प्रकार मन को जीतो। और,

आसा तृष्णा बिषय वासना देहु कतल करवाई।।
मन को जीत लेहुँ मोरे भाई।।

आशा—आगे कुछ आस लगी है, **तृष्णा**—अभी कम है, और हो जाय।

धृतराष्ट्र राजा थे, सभी लड़के राजा थे। पुत्रमोह में जो राज्य पाण्डुपुत्रों का था, उनको बार-बार भगाया और छल-छद्म करके अपने बेटों को गद्दी में बैठा रखा था। पाण्डवों को वनवास देने में सफल भी हो गया। दुर्योधन और बड़ा राजा हो जाय तो पाण्डवों को छल-छद्म करके जुआ में हरवा दिया।

जब उसने संजय के द्वारा गीता सुना, संजय ने कहा– राजन्! विजय तो पाण्डवों की होगी। धृतराष्ट्र बोला– वो कैसे? संजय ने कहा– श्रीकृष्ण उनकी ओर हैं। जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ विजय है, विभूति है, वहाँ अचल नीति है। धृतराष्ट्र बहुत रोया, बोला– संजय! राजनीति की कसौटी पर कस-कसके कदम आगे रखता हूँ, निराशा ही हाथ लगती है। प्रतीत हो रहा है भाग्य ही बलवान है। ये बताओ फौज कितनी? संजय बोला– आपके पुत्र के पास ग्यारह अक्षौहिणी। धतृराष्ट्र ने पूछा– पाण्डवों के पास? तो संजय बोला– सात अक्षौहिणी। अन्धा तो अन्धा, फिर गरम पड़ गया– ठीक है-ठीक है, तुम युद्ध का हाल बताओ। गर्दन पकड़कर सौ लड़कों को मरवा डाला। संजय ने पहले ही कहा था– विजय पाण्डवों की होगी, श्रीकृष्ण उनकी ओर हैं। धृतराष्ट्र ने सोचा– संख्या दूने के करीब जा रही है, तब कैसे जीत लेंगे! हर बाप पुत्रमोह में उतने ही अन्धे होते हैं।

आसा तृष्णा बिषय वासना देहु कतल करवाई।।
मन को जीत लेहुँ मोरे भाई।।

फिर पाओगे क्या? सहज शान्ति!

शान्ति और सन्तोष किले में घुस जा एड़ लगाई।

जहाँ सहज **शान्ति** है, सदा रहनेवाली शान्ति, **'संतोष'**– जिसमें विषमता नहीं, जो सम है, व्यापक है, उसके प्रत्यक्ष दर्शन के साथ मिलनेवाला पूर्ण तोष है, उसका नाम सन्तोष है; ये नहीं कि घी गिर गया तो सन्तोष कर, महीने भर में भैंस बियायेगी तो पेट भरके खा लेना। परिस्थिति से समझौता करना सन्तोष नहीं है। जो सम है, जिसमें विषमता नहीं है, जिसके लिए वह अभ्यासरत था, जिसको पाने के लिए निकला था, उसका साक्षात्कार हो जाय, प्रत्यक्ष दर्शन के साथ जो तोष मिलता है उसका नाम 'सम और तोष'-सन्तोष है। फिर कभी निराश नहीं होगा, वहाँ सहज शान्ति।

शान्ति और सन्तोष किले में घुस जा एड़ लगाई।

वहाँ बिल्कुल दृढ़ता से आगे कदम बढ़ा, प्रवेश कर।

कह पुरुषोत्तम निर्भय हो जा, मुक्ति जगीरी पाई॥
मन को जीत लेहुँ मोरे भाई॥

पुरुषों में उत्तम – पुरुषोत्तम। अब तक तो साधारण था, आज हो गया पुरुषोत्तम। **'निर्भय हो जा मुक्ति जगीरी पाई।'**– जिसका नाम मोक्ष है, मुक्ति है, वह जागीरी मिल गयी।

भगवान और हमारे बीच में रुकावट केवल मन है। कबीर साहब से किसी ने पूछा– क्या रात-दिन खटपट सुनाते रहते हो, ये बताइए कबीर साहब! ज्ञान क्या है–**'कोह ज्ञान है'**, ध्यान क्या है–**'कोह ध्यान है'**, पारखबानी क्या है–**'को है पारखबानी।'**, किसके लिए ज्ञान की जरूरत पड़ गयी?, किसके लिए ज्ञान कूटते हो?

कोह ज्ञान है कोह ध्यान है, को है पारखबानी।
काहे लिए तुम ज्ञान कूटत हो, को है अंतर्यामी॥

किसके लिए रात-दिन ज्ञान की चर्चा करते हो?, और आपका वह अन्तर्यामी कौन है?

कबीर साहब ने उसकी बात का उत्तर दिया, बोले–

मनै ज्ञान है, मनै ध्यान है, मन है पारखबानी।
मनै लिए हम ज्ञान कूटत, मोर मनवै अन्तरयामी।।

मन के लिए ज्ञान की जरूरत पड़ी, मन को निरोध करने के लिए ध्यान की जरूरत पड़ी। और जहाँ निरोध होने लगा, '**पारखबानी**'–अपौरुषेय वाणी उतरने लगी मन के ही लिए; दूसरी हमें कौन जरूरत थी! और मन के लिए हम निरन्तर ज्ञान में रमण, ज्ञान की चर्चा करते हैं कि ये मन राह से भटक न जाय- '**मनै लिए हम ज्ञान कूटत**'। मन का कोई भरोसा नहीं कब भटक जाये। और '**मोर मनवै अन्तरयामी**'– और मेरा मन ही जब निरोध हो गया तो शान्त, सम मन में वह परमात्मा प्रसारित हो जाता है, फिर मन मिट जाता है, मन की जगह पर परमात्मा प्रसारित हो जाते हैं। पूज्य परमहंस महाराजजी कहते थे कि– होऽ, कहीं न कहीं नाम–रूप–लीला–धाम में मन को लगाये रहो; नहीं तो जैसे ही यह छुटकारा पायेगा, विषयों की ओर भाग जायेगा।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

।। ॐ श्रीसद्‌गुरुदेव भगवान की जय।।

राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे

ओम् जय गुरुदेवं जय गुरुदेव।

ओम् जय सियाराम जय जय सियाराम........

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥

(मानस, 7/95/2)

बोलो श्रीराम जय राम जय जय राम............

ओम् जय सियाराम जय जय सियाराम........

भजन एक परमात्मा का; लेकिन हम लोग पता नहीं किस-किसका भजन करते हैं। घर में दस व्यक्ति है तो दस देवताओं के पुजारी हैं। पिताश्री चले गए विश्वनाथजी दर्शन करने, माताजी चली गईं दुर्गाजी दर्शन करने, बेटा चला गया संकटमोचन दर्शन करने, और चाचाजी चले गए पिशाचमोचन.... पता नहीं किस-किसका भजन करते हैं! भगवान एक, उनकी विभूतियाँ अनन्त हैं। उनकी विभूतियों का सृजन जिससे होता है, उसका नाम है दैवी-सम्पद्। और उस दैवी-सम्पद् को शनैः-शनैः हृदय में अर्जित करना देवता-पूजा है। बाह्य देवता-पूजा मूढ़बुद्धि की देन है। हम मूढ़ कभी नहीं थे। विश्वगुरु भारत! मूढ़ता आई कहाँ से!! लेकिन प्रकृति के इस संसार-समुद्र में उलटफेर होता आया है। एक ऐसा भी समय आया था, महाभारत काल के ढाई-तीन हजार वर्ष पश्चात् सम्राट अशोक का एकछत्र साम्राज्य था। सिकन्दर के अनुयायियों को चंद्रगुप्त मौर्य और चाणक्य ने मार भगाया था, इसी चंद्रगुप्त मौर्य का पौत्र अशोक हुआ जिसने एक बार एक बहुत बड़ी दिग्विजय कर ली। इस अशोक के ही वंश में, मौर्यवंश का अंतिम सदस्य हुआ बृहद्रथ मौर्य, उसकी हत्या करके पुष्यमित्र शुंग गद्दी पर बैठ गया। और उसने बैठते ही यह नियम लगा दिया– बौद्ध धर्म नहीं, हिन्दू धर्म नहीं, पढ़ाई सबके लिए जरूरी नहीं, महाभारत मत सुनो और गीता घर में मत रखो, निरक्षर ही ठीक हो।

जिस देश में शिक्षा नहीं, निरक्षर अँगूठाछाप लोग... लोगों ने महाभारत सुनना शुरू किया तो बोले– मत सुनो अन्यथा महाभारत हो जाएगा। सृष्टि के आरम्भ से लेकर द्वापर तक का विवरण महाभारत में है। पूर्वजों की गौरवगाथा, चक्रवर्ती, दिग्विजय, त्रिलोक विजय की गौरव-गाथा, बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि-योगेश्वरों का जीवन-वृत्तान्त, साधना-पद्धतियाँ महाभारत में सब है। यदि कायदे से चार घंटा रोज पढ़ा जाए तो आठ-नौ महीना लग जाएगा, इतने में भैंस मरी, भैंस की पड़िया मरी, कोई बुजुर्ग चल बसे, तो बोले– ल्यो, महाभारत शुरू हो गया। कहा था न, महाभारत मत सुनना, अब और भी कुछ होनेवाला है। तो डर की वजह से इतिहास सुनना भी बंद।

जब महाभारत में से गीता बाहर निकाल दिया तो बोले– मत पढ़ो, लड़का साधु हो जाएगा, यह संन्यासियों के लिए है। लड़का भांड़ हो जाए, नचनिया हो जाए, शराबी हो जाए, डाकू हो जाए, केवल साधु न होने पाये। और कहीं कुछ नहीं। कौन प्रलय हो जाएगा साधु हो जाएगा तो? दो भाई हैं, घर में रहकर रात-दिन झगड़ा ही तो करते हैं! माँ-बाप को कौन-सा सुख दे रहे हैं? हम तो रात-दिन देख रहे हैं। किसी-किसी घर में एक लड़का था तो मनाए, बोले– भगवान्! जोड़ा लग जाए, दो हो जाय। जब दो भाई हो गये, एक उधर मुँह करके बैठा है एक इधर...। नहीं देख रहे हो!

गीता के लिए कहा– लड़का साधु हो जाएगा, यह संन्यासियों के लिए है। लेकिन प्रवक्ता भगवान श्रीकृष्ण संन्यासी नहीं थे, सोलह हजार रानियाँ और आठ पटरानियाँ थी। अर्जुन श्रोता, वो भी संन्यासी नहीं था, चार रानियाँ द्रौपदी, सुभद्रा, बभ्रुवाहन की माता चित्रांगदा और नागकन्या उलूपी। न श्रोता अंधा धृतराष्ट्र संन्यासी था, न वक्ता संजय संन्यासी था, पता नहीं कौन-से संन्यास के लिए लिखी है!

अँगूठाछाप होने से जो Rumor (अफवाह) उड़ा दिया वही धर्म बनता चला गया। जिसका इतिहास छीन लिया, शिक्षा छीन ली, धर्मशास्त्र छीन लिया, और यह ऋषियों की संतान भारत अपने उस धर्म के लिए, प्रभु के

लिए संस्कार में श्रद्धाभाव, समर्पण लेकर आया था, और वह विकल हो गया, ढूँढ़ने लगा तो किसी ने कुछ भी पकड़ा दिया वो भी धर्म। तैंतीस करोड़ देवता, तैंतीस करोड़ भूत। और कम पड़ गया तो मजार पर जाकर खड़े हो गए। किन्तु आपका धर्मशास्त्र गीता है। गीता का विस्तार हैं वेद। समस्त महापुरुषों की वाणी गीता ही के आधार पर है– एक आत्मा ही सत्य है, विधाता और उससे उत्पन्न सृष्टि नश्वर है, आज हैं तो कल नहीं रहेगी, शरीर नाशवान है, आत्मा अमृत-तत्त्व है, शाश्वत सत्य हैं, सनातन पुरुष है, काल से अतीत है। जो परब्रह्म परमात्मा की उपाधियाँ हैं, वही सब आत्मा की हैं। आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, ईश्वर यह पर्यायवाची शब्द हैं। आदि महापुरुषों के, भगवान के श्रीमुख से निःसृत यह वाणी है। भगवान का एक नाम आत्मा अर्थात् परमात्मा! वह सत्य है, तत्त्व है। जिनके तेज के अंशमात्र से सृष्टि का सृजन, पालन और परिवर्तन होता ही रहता है, उस एक प्रभु की शरण जाओ। उनको विदित करने का उपाय है यज्ञ। योगविधि यज्ञ है। बहुत से योगी लोग स्वांस को प्रस्वांस में हवन करते हैं, प्रस्वांस को स्वांस में हवन करते हैं, और स्वांस-प्रस्वांस की गति को रोककर प्राणायाम-परायण हो जाते हैं, संयम अग्नि में हवन करते हैं। ज्ञानाग्नि, योगाग्नि, संयमाग्नि.... तेरह-चौदह प्रकार का यज्ञ.... कहीं आग नहीं जलती लेकिन कालांतर में एक भ्रांति खड़ी हो गई कि आग जला लिया, हो गया यज्ञ। यज्ञ एक योगविधि है। आग में डालने से हर वस्तु भस्मसात् हो जाती है। संयम एक ऐसी अग्नि है, इन्द्रियों का बहिर्मुखी प्रवाह सिमटकर शांत हो जाता है। योग कहते हैं मिलन को। जो संसार के संयोग-वियोग से रहित है, आत्यन्तिक सुख है जिसका नाम परम तत्त्व परमात्मा है, उसके मिलन का नाम योग है। नैष्ठिकीम् सिद्धि– आगे कुछ भी प्राप्त करने के लिए शेष नहीं। यह एक ऐसी अग्नि है कि संसार के शुभाशुभ संस्कार सदा के लिए जल जाते हैं। यहाँ कोई बाह्य आग नहीं जलती, मन के निरोध और विलय काल में संसार के संस्कार ही दग्ध हो जाते हैं जिसका नाम है प्राणायाम– प्राणों के व्यापार पर विराम लग जाना। मन के अंतराल में न भले उद्वेग उठे, न बुरे, वृत्ति शांतवाहिता हो जाए,

इसका नाम है प्राणायाम। न ही सन्देह है, और न भविष्य में कभी होगा। और इस यज्ञ का परिणाम है–

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।। (गीता, 4/31)

अर्जुन! यज्ञ की चरमोत्कृष अवस्था 'प्राणायाम'– प्राणों के व्यापार पर विराम लग गया। यह मन की निरोधावस्था है। इस निरोध के साथ ही यज्ञ का परिणाम निकल आता है, वो है अमृत का भोजन, सनातन ब्रह्म में स्थिति। यज्ञ का अवशेष यह नहीं कि हमने यज्ञ किया, दस टीना घी बच गया, पाँच बोरा आटा बच गया, छानो-घोटो। यज्ञ का अवशेष है– ज्ञानामृत का भोजन, सनातन ब्रह्म में स्थिति। यज्ञ करने का अधिकार किसको है?, तो– '**नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।**'– यज्ञरहित पुरुष के लिए दोबारा मानव तन भी सुलभ नहीं है तो परलोक कैसे होगा! इस यज्ञ को कार्यान्वित करना कर्म है। एक ही कर्म की चार श्रेणियों से गुजरकर लक्ष्य विदित होता है उसका नाम है वर्ण।

गीता योग-साधना का शिकंजा है, इस भटकी हुई आत्मा को अपने ही सहज परमात्म-स्वरूप में स्थिति दिलाता है। गीता ही आपका आदि धर्मशास्त्र है, सबके पास होना चाहिए। 'यथार्थ गीता'.... गीता का जो अर्थ है, तीन-चार बार पढ़ लोगे तो एक-एक प्रश्न अलग-अलग साफ हो जाएगा। केवल अर्थ पढ़ लो, जिस भाषा को जानते हो, उस भाषा में पढ़ लो। चार-छः बार जहाँ अर्थ पढ़ने में आ गया, एक-एक प्रश्न स्पष्ट हो जाएगा कि मैं कौन हूँ?, मेरी वास्तविकता क्या है?, भजन करने का अधिकार किसको है?, भजन कैसे करें?, किसका करें?, क्यों करें? यह संसार में फैले हुए धार्मिक मान्यताओं से अलग, परब्रह्म परमात्मा के श्रीमुख की वाणी है और यही आपका धर्मशास्त्र है। संसार में दो हाथ-पैरवाला मनुष्य कहीं है तो उसका आदि धर्मशास्त्र गीता ही है। यह साक्षात् परमात्मा के श्रीमुख निःसृत वाणी है, कालजयी कृति है।

इसी का विस्तार गोस्वामीजी ने किया है। उत्तरकाण्ड उत्तर है, सभी प्रश्नों का समाधान है। अंत में समाधान करते हुए कहा कि इस दुनिया में धार्मिक कौन है?

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।

(मानस, 7/126/1-2)

वह धर्मज्ञ है, धर्म का विशेषज्ञ है, धर्म के मर्म को, रहस्य को जाननेवाला है, वह गुणी है, ज्ञाता है, वह पण्डित है और दानदाता है। कौन? कि– **'राम चरन जा कर मन राता।'**– उन परमात्मा के चरणों में जिसका मन अनुरक्त है। इतना ही कुल धर्म है।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना।।

(मानस, 7/126/3)

दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई।।

(मानस, 7/48/8)

वह नीति में निपुण, परम सयाना, समाज का सबसे सुलझा हुआ पुरुष है, क्रिया में दक्ष है और वेदों का सिद्धान्त भली प्रकार उसने जान लिया है भले ही अँगूठाछाप, अनपढ़ क्यों नहीं हो। किसने? कि **'राम चरन जा कर मन राता।'**– राम - एक परम प्रभु - के चरणों में जिसका मन अनुरक्त है।

भगवान शिव रामचरितमानस के निर्माता, रचयिता हैं। **'रचि महेस निज मानस राखा।'**– अपने मन के अंतराल में रचना करके, उसको छिपाकर रखा था, **'पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा।।'** (मानस, 1/34/11)– अशुभ के विपरीत जब शुभ का समय आया तो शिवा के प्रति कहा। मानस के रचयिता भगवान् शिव हैं, तुलसीदास इत्यादि सभी अनुवादक। वाल्मीकि भी अनुवादक, लोमष भी। अंत में भगवान शिव ने कहा कि– हे पार्वती! इन संसार में धार्मिक कौन है?

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत।। (मानस, 7/127)

हे पार्वती! वह सारा कुल कृतार्थ है जिस कुल में किसी एक का राम- उन परम प्रभु - के चरणों में अनुराग पैदा हो गया हो। इतना ही कुलधर्म है। यदि और भी कोई साधना-पद्धति है?–इस पर उन महापुरुष का कहना है–

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल।। (मानस, 7/122क)

पानी मथने से घी निकल आए, बालू पेरने से तेल निकल आए, यह असंभव कदाचित् संभव हो जाए किन्तु हरि का भजन किये बिना कोई भवसागर पार नहीं हो सकता, यह सिद्धान्त अकाट्य है, अतर्क्य है। परमात्मा का एक नाम 'हरि'– जिस पर अनुग्रह करते है उसका शुभाशुभ हर लेते हैं और बदले में अपना स्वरूप प्रदान कर देते हैं।

साधक को हमेशा अनुरागपूरित हृदय से नाम, रूप, लीला और धाम में लगा रहना चाहिए।

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें।।

(मानस, 1/20/6)

बगैर स्वरूप देखे नाम का सुमिरन शुरू कर दो। विशेष स्नेह से, प्रेम से जब लौ लग जायेगी तब हृदय में स्वरूप आ जाएगा। जब स्वरूप दिखाई पड़े, ध्यान धर लेना। अभी हमने देखा ही नहीं, ध्यान किसका करोगे? भगवान बता देंगे, यही हमारा स्वरूप, यहाँ से ध्यान शुरू कर। इसलिए साधना का आरम्भ नाम से। और शनैः-शनैः स्तर उठते-उठते नाम, नामी का स्पर्श कराकर तब शान्त होता है।

तुलसीदासजी ने इस पर बहुत जोर दिया कि–

राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे।
कलि न बिराग, जोग, जाग, तप, त्याग रे।।1।।

राम सुमिरत सब बिधि ही को राज रे।
रामको बिसारिबो निषेध-सिरताज रे।।2।।

राम-नाम महामनि, फनि जगजाल रे।
मनि लिए, फनि जियै, ब्याकुल बिहाल रे॥3॥

राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे।
कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि रे॥4॥

राम-नाम प्रेम-परमारथको सार रे।
राम-नाम तुलसीको जीवन-अधार रे॥5॥ (विनयपत्रिका, 67)

- - - - - - -

राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे।

फॉर्मेलिटी (औपचारिकता) अदा मत करो, सदा जपो। यह नहीं कि सुबह-शाम चार माला टाल दिया, दिनभर फ्री। खाना खाते, पानी पीते, शौच जाते, खुरपी चलाते, गाय चराते, नौकरी करते, बच्चा खिलाते हर समय नाम याद आया करे, सोने में सुहागा है।

सुबह-शाम आधा घंटा बैठकर भी जपने में समय दो। तो तुलसीदासजी का कहना है– सुबह-शाम नहीं, सदा **'राम राम जपु जिय'**– रे जिय! राम-राम... बस राम इतना जप। **'सदा सानुराग रे'**– सदा जपो, अनुरागपूरित हृदय से जपो, भरत की तरह पूर्ण श्रद्धा के साथ जपो।

कहो कि हम वैराग्य कर लेंगे, जोग कर लेंगे तो,

कलि न बिराग, जोग, जाग, तप, त्याग रे॥1॥

यदि कलयुग का आवरण चारो तरफ है तो न आपसे वैराग्य पार लगेगा, न जोग पार लगेगा, न जागरण, न तप, न त्याग। ऐसी परिस्थिति में नाम ही एक आधार है। वह सारे प्रकृति के खो-खंद काट देगा।

राम सुमिरत सब बिधि ही को राज रे।
रामको बिसारिबो निषेध-सिरताज रे ॥2॥

वेदों में आता है– यह वैध है, यह अवैध है... विधि और निषेध... आखिर साधना की पद्धति क्या है? राम-सुमिरन सारी विधियों का राजा है।

यह राजविधि है, यह सर्वोपरि विधि है। और,

रामको बिसारिबो निषेध-सिरताज रे ॥2॥

राम को भुला दिया तो निषेध का सरताज.... आपने अपने पाँव में कुल्हाड़ी मार लिया। यह निषेध का सरताज है। तुमने वो त्याग दिया है जो कभी नहीं छोड़ना चाहिए। तो–

राम-नाम महामनि, फनि जगजाल रे।
मनि लिए, फनि जियै, ब्याकुल बिहाल रे ॥3॥

रामनाम एक महान मणि है।

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥

(मानस, 7/119/9)

भक्ति एक मणि है। यह जिसके हृदय में बसती है, दुःख लवलेश भी उसका स्पर्श भी नहीं कर पाता।

मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥

(मानस, 7/119/4)

'प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई।' (मानस, 7/119/5)– इस राम नाम के प्रभाव से अविद्या का अंधकार मिट जाएगा, और **'बसइ भगति जाके उर माहीं।'** (मानस, 7/119/6)

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥ (मानस, 1/21)

रामनाम मणि-दीपक जीभ की देहरी के दरवाजे पर रख दो, भीतर प्रकाश, बाहर प्रकाश। न भीतर में कोई विकार का अभ्युदय होगा और न ही सृष्टि में फैले हुए विकारों के संकल्प अन्दर प्रवेश कर पायेंगे।

'राम-नाम महामनि'– यह महान् एक मणि है और संसार ही एक सर्प है। सर्प से यदि मणि छीन ली जाए तो मुर्दे की तरह हो जाता है, निष्प्राण हो जाता है, किसी तरीके से स्वांस लेता है।

राम-नाम महामनि, फनि जगजाल रे।
मनि लिए, फनि जियै, ब्याकुल बिहाल रे ॥3॥

इस संसार में से राम नाम मणि ले लेने पर हृदय में यह संसाररूपी सर्प जिंदा अवश्य है लेकिन व्याकुल है, बेहाल है। फिर वो आपका अनिष्ट नहीं कर सकता। होते हुए भी आपका कुछ भी नुकसान नहीं कर सकता हैं क्योंकि वह खुद मर रहा है, इसलिए इस संसाररूपी सर्प का प्रभाव फिर नहीं पड़ेगा।

राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे।

'राम-नाम कामतरु'– यह राम नाम कल्पवृक्ष है, **'देत फल चारि रे'**– अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारों फल देने में समर्थ है राम नाम।

राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे।
कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि रे ॥4॥

ऐसा पुराणों ने, पुराण-पुरुषों की जीवनियों ने, वेदों ने, पूर्णज्ञाता पण्डितों ने, और साक्षात् भगवान शिव ने गायन किया है, क्योंकि राम नाम का प्रभाव वो जानते थे।

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥

(मानस, 1/118/1)

अपने बल से शंकरजी अभय पद नहीं प्रदान करते। **'जासु नाम बल करउँ बिसोकी।'**– उन भगवान के नाम के बल से मैं शोक से मुक्त अभय पद प्रदान कर देता हूँ। भगवान शिव जानते थे, इसका प्रभाव है। वह प्रत्यक्ष द्रष्टा हैं। तो–

राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे।

क्या प्रमाण है कि देते हैं?

कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि रे ॥4॥

पुराण, वेद, पण्डित (उसके ज्ञाता) और स्वयं भगवान शिव, वही

बराबर इसका वर्णन करते आ रहे हैं। इसलिए अंत में कहते हैं–

राम-नाम प्रेम-परमारथको सार रे।

'राम-नाम' यदि आप जपना शुरू करोगे..... आज भगवान में हमारा प्रेम है नहीं, यदि जपना शुरू कर दोगे सटदेनु (तुरन्त) प्रेम जग जाएगा, प्रेम के बीच के रोड़े हट जायेंगे, अंधकार छट जाएगा। और जब प्रेम जागृत हो गया तो 'परमार्थ'– परम+अर्थ– वो है परमात्मा, वही धन सुलभ हो जाएगा।

इस जगतरूपी रात्रि में सभी जीव अचेत पड़े हुए हैं। मानस में है–

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।।

(मानस, 2/92/2)

मोहरूपी रात्रि में सभी जीव अचेत पड़े हुए हैं, रात-दिन दौड़-धूप करते हैं, पराक्रम प्रकट करते हैं, मात्र सपना देख रहे हैं। अरे! यह सपना घड़ी-दो घड़ी का जो रात को शयनकाल में देखते हो, और यह संसारवाला सपना अस्सी-नब्बे साल का; और क्या! फिर–

कबिरा नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाइ।
सोइ पुर पाटन सो गली, बहुरि न देखा आइ।।

हमारा होता तो हम साथ क्यों नहीं ले गये? यह भी एक सपना है।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना।।

(मानस, 3/38/5)

यह अचेत पड़े हुए प्राणी हैं। जागता कब है? जब प्रभु में स्नेह जागृत हो जाए। तो अचेत प्राणी में जागृति प्रदान करना नाम के प्रभाव से हो जाएगा। तो–

राम-नाम प्रेम-परमारथको सार रे।

फिर परम+अर्थ– शाश्वत अनुभूति का सार है। और,

राम-नाम तुलसीको जीवन-अधार रे ।।5।।

तुलसीदासजी के जीवन का आधार केवल राम नाम है। इसलिए (तुलसीदास जी) सबको निवेदन करते हैं कि यही हमने खोजा है, पाया है। तो–

राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे।

पूर्ण अनुराग के साथ सदा जाप करो, हर परिस्थिति में जाप करो। भगवान का नाम जपने के लिए कोई जगह अपवित्र नहीं होती। फूल बिछाकर बैठो, कन्नौज का अतर छिड़ककर बैठो, यदि हृदय में श्रद्धा नहीं, भाव नहीं तो जगह अपवित्र है। भगवान **'प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।'** (मानस, 1/184/5)। वहाँ जो पुष्प चढ़ते हैं वह भाव के, श्रद्धा के, प्रेम के चढ़ते हैं। तो सदा अनुराग सहित जपो। इष्ट के अनुरूप लगाव का नाम अनुराग है। तो,

राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे।

अनुरागपूरित हृदय से जपो। कहो कि हम वैराग कर लेंगे, योग कर लेंगे.... जो कहते हैं, वह कर चुके, वह दलदल में बहुत नीचे दब गया है। और कहोगे कि हम योग कर लेंगे तो योग के नाम पर पेट ऊपर-नीचे करके जिंदगी काट लोगे, और क्या करोगे। आजकल जो योग चलता है न, पैर ऊपर कर, उचकी ले, कोई मतलब नहीं है। कहते हैं– स्वस्थ हो जाओगे। हम बीमार ही कब थे जो स्वस्थ हो जायेंगे! अरे, जो मरीज आया है, उसे सिखाओ, कि सबको सिखाओगे! भगवान से कोई मतलब नहीं। तो कलयुग योग को खा गया और अपना एक प्रतिरूप बैठा दिया।

कलि न बिराग, जोग, जाग, तप, त्याग रे ॥1॥

दुर्योधन, शकुनी और अंधे धृतराष्ट्र इत्यादि ने पांडवों को कई बार जान से मार डाला, लेकिन प्रभु रक्षक के रूप में थे। पाण्डव सारे ममत्व के धागे समेटकर भगवान के चरणों में बाँधकर बैठे थे, सब जगह बचते ही चले गए।

जब लाक्षागृह से निकलकर आ गये तो अंधा धृतराष्ट्र लगा घड़ियाली आँसू बहाने– प्रिय युधिष्ठिर! प्रिय पाण्डुपुत्रो! दुर्योधन बड़ा मूर्ख है, कुछ उसको भी दे दो। राज्य युधिष्ठिर का था, दुर्योधन और धृतराष्ट्र का कुछ भी नहीं था। युधिष्ठिर बोला– पिताश्री! आप जैसा उचित समझे। धृतराष्ट्र ने कहा– ऐसा करो, वो दुर्योधन बड़ा मूर्ख है, उसको कुछ आता-जाता नहीं है। यह जो पुश्तैनी गद्दी है हस्तिनापुर उसको दे दो; और जो खाण्डववन है न, जो घनघोर जंगल, बीहड़ है वह तुम लोग ले लो।

भीम तो बौखला गया, लेकिन युधिष्ठिर आज्ञापालक थे। भगवान श्रीकृष्ण ने इशारा किया– हूँ.... चलो। इनको मरने दो, तुम चलो, तुम निर्माण करोगे। तुम कर्मयोगी हो, तुम भोगी नहीं हो। यह बेचारे टुकड़े पर पलनेवाले, इनको पलने दो।

एक दिन इंद्रप्रस्थ बन गया, घनघोर जंगल में हस्तिनापुर से सहस्त्रों गुना बड़ा एक भवन बन गया, अंधे धृतराष्ट्र को राजसूय यज्ञ का निमंत्रण गया। दुर्योधन, शकुनि जब पहुँचे तो दुर्योधन जल बुताया, बोला– अरे! इन कुन्ती के पुत्रों को हमने ऐसे जंगल में भेज दिया था कि इन पहाड़ों से सिर मार के, पटक के मर जाओ, वहीं ठंडे हो जाओ किन्तु हस्तिनापुर से बढ़िया तो यहाँ महल बना लिया। जो राजसूय यज्ञ मुझे करना चाहिए था, यह युधिष्ठिर कर रहा है। कोई ऐसा रास्ता मिल जाय कि मैं इस युधिष्ठिर का विध्वंस कर देता।

पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई।।

(मानस, 7/120/34)

दुर्योधन कुटिलता में लगा जलने-भुजने। इतने में युधिष्ठिर ने कहा– केशव! दान-पुण्य करने की जिम्मेदारी किसे सौंपी जाए? तो श्रीकृष्ण ने कहा– इसके लिए तो तुम्हारे अनुज युवराज दुर्योधन ही ठीक रहेंगे। दुर्योधन बहुत खुश हुआ कि मौका तो मिल गया। शाम तक इसके खजाने को उजाड़ नहीं दिया तो मेरा नाम दुर्योधन नहीं। दुर्योधन बोला– केशव! मैं भैया की प्रतिष्ठा में आँच नहीं आने दूँगा। भगवान बोले– ठीक, करो फिर।

लगा दोनों हाथ उलीचने। शाम को कर्मचारियों से पूछा– खजाना खाली हुआ कि नहीं? वे बोले– युवराज! जितना खजाना सुबह आपको चार्ज में मिला था, उससे सवाई है।

दुर्योधन को नींद नहीं आई। खजाना लुटाने के लिए हस्तिनापुर से और कर्मचारियों को बुला दिया, और बिगड़ा पण्डितों के ऊपर कि, दुनिया प्रगति करके न जाने कहाँ पहुँच गई, तुम लोगों की झोली कंधे से नहीं हटी, छकड़ा लेकर आओ। पण्डित लोग भी बहुत खुश हुए, बैलगाड़ी लेकर दान लेने आने लगे। दुर्योधन बोला– उड़ेले रहो।

सब छकड़े भर-भरकर जा रहे थे, 'जय भगवान श्रीकृष्ण की', 'जय धर्मात्मा नरेश युधिष्ठिर की' तो दुर्योधन बोला कि बेटा, घड़ी खांड और जय बोल लो, फिर ठन-ठनपाल, यज्ञ विध्वंस। अभी एक महीना चलना है, आज तो तीसरा ही दिन है।

शाम को पूछा कि खजाना खाली हुआ कि नहीं? कर्मचारी बोले– युवराज! जितना खजाना चार्ज में मिला था उससे दूना है। और दाँत पीसकर लगा लुटाने। अंत में यज्ञ भी पूर्ण हो गया और जब खजाने की पुनः गणना हुई तो दुर्योधन को बाँटने के लिए जो खजाना मिला था, जो उसे अपार लग रहा था, उससे चौगुना खजाना उनके खजाने में था। और लुटाया था जी भरकर। तब कर्म पीटकर रह गया कि यह पता होता तो मैं किसी को एक दमड़ी न देता। हम सोचे, इसकी बेइज्जती कर देंगे, इसकी तो और भी इज्जत बढ़ गई।

वास्तव में दुर्योधन के पाँव में एक चक्र था जिसका मतलब था– यह जितना ही लुटाएगा, उतना ही बढ़ेगा। इसका ज्ञान न तो बेचारे उस दुर्योधन को था, और न ही किसी को था। और भगवान से कुछ छिपा ही नहीं था। माल था दुर्योधन का, भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के पक्ष में खर्च करवा लिया। वह जितना लुटायेगा उतना ही बढ़ेगा, और उस गरीब को मालूम नहीं। इसलिए भगवान की शरण हो जाने पर चराचर जगत बैरी हो जाए, तब भी

कोई फर्क नहीं पड़ता, सबकी स्वांस की नस पकड़नेवाला प्रभु तो आपके साथ है।

जा पर कृपा राम कै होई, ता पर कृपा करें सब कोई॥

शरणागत की सारी मनोकामनायें पूर्ण होती हैं।

जब द्रौपदी का चीरहरण हो रहा था, भीम ने प्रतिज्ञा किया– जिस जांघ को दुर्योधन ने थपथपाया, युद्ध में उन जांघों को मैं गदा से तोड़ूँगा। जब प्रतिज्ञा की थी तब दुर्योधन हाड़-मांस का एक पुतला था, आप ही लोगों की तरह एक मनुष्य मात्र था, किन्तु जब मुकाबला हुआ तो दुर्योधन एकदम वज्र कोटेड। कुछ देर तो दुर्योधन गदा से लड़ा, फिर उसे जब पता चला, मुझे चोट नहीं लग रही है, गदा फेंक दिया, भीम के वार सिर पर झेलने लगा। डेढ़ हाथ जमीन में धँस जाए, फिर उछलकर ज्यों-का-त्यों।

दुर्योधन भीम की गदा का वार मुक्के पर झेलने लगा, अँगूठे पर झेलने लगा, पीठ पर बहुत प्रसन्नता से झेलने लगा। भीम ही फिचकुर फेंकने लगा। तब अर्जुन ने कहा– केशव! दुर्योधन का पलड़ा मुझे भारी लग रहा है। भगवान ने कहा– युद्ध है, किसी का हल्का और किसी का भारी तो होना ही है। अर्जुन बोला– तब केशव? भगवान् श्रीकृष्ण बोले– उसको प्रतिज्ञा याद दिला दो। अर्जुन बोला– प्रतिज्ञा जांघ तोड़ने की थी, और गदा-युद्ध में कमर के नीचे गदा का वार जाता नहीं, निषिद्ध होता है। भगवान ने कहा– तुमसे मतलब नहीं, तुम उसको प्रतिज्ञा याद दिला दो। अर्जुन ने कहा– नहीं केशव! यह अन्याय तो मुझसे नहीं होगा। भगवान बोले– तब फिर युद्ध देखो।

भगवान ने सोचा– इन भक्तों के लिए मुझे क्या-क्या नहीं करना पड़ता, अनायास बोल पड़े– वाह रे! मझले भैया! क्या गजब का पैंतरा था यह तो। दाऊ चाहते थे, दुर्योधन जीत जाए। दाऊ बोले– कृष्ण! क्यों शोरगुल करते हो! युद्ध देखो युद्ध। भगवान बोले– अरे दाऊ! जरा आप ध्यान से देखें, उधर तो देखें, मझले भैया का यह दाँव तो अति प्रशंसनीय रहा, आपने भी नहीं सिखाया होगा। जरा उधर तो देखें....।

दाऊ उधर देखने लगे, तब भगवान ने भीम से कहा– हाँ मझले भैया! .... और जंघे को ठोंककर इशारा दिया। भीम को अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई, एक ही वार में गिरा दिया। पाण्डवों की प्रतिज्ञा पूरी होना असंभव थी, पूर्ण हो गई। तो– **'जाकें रथ पर केशो, ताको कौन अंदेशों।'**

असली दुर्योधन होता, दो-चार वार से ज्यादा का था ही नहीं, लेकिन जब मुकाबला हुआ तो वज्र-कोटेड था। एक दिन माता गांधारी ने कहा– पुत्र! अकेले बचे हो? दुर्योधन बोला– हाँ माताजी! गांधारी ने कहा– जाओ, अपने बड़े भैया युधिष्ठिर के चरण छू, जा राज कर, वो बहुत दयालु है। दुर्योधन बोला– माताजी! अब तो यह संभव नहीं है। मुझे राजगद्दी पर बैठा देखकर प्रसन्न कौन होगा? दुःशासन गया, कर्ण गया। गांधारी ने कहा– तो फिर तुम गंगा-स्नान करके आओ, जैसे तुम जन्मे थे वैसे ही आओ, मैं पट्टी खोलकर एक निगाह देख लूँगी तो जीवन भर हमने जो तपस्या अर्जित की है वह सारी शक्ति उड़ेल दूँगी, तुम्हारा शरीर वज्र हो जाएगा, फिर तुम मरोगे नहीं। दुर्योधन बोला– माताश्री! विजय का आशीर्वाद दो। गांधारी बोली– विजय का आशीर्वाद मैं नहीं दे सकती। विजय वहाँ होती है जहाँ भगवान होते हैं, भगवान उनके पक्ष में हैं; लेकिन तुम मरोगे नहीं।

अब दुर्योधन नंग-धड़ंग उधर से चला। भगवान श्रीकृष्ण जानते थे कि कहाँ पर क्या घटना घटित हो रही है, बीच रास्ते में मिल गए, बोले– अरे युवराज दुर्योधन! वस्त्र कहाँ भूल आए आज? तो चुप। बोले ही न। श्रीकृष्ण बोले– तुम्हारा रुख माता गांधारी के शिविर की तरफ है? दुर्योधन बोला– हाँ, मैं वही जा रहा हूँ। श्रीकृष्ण बोले– इस दशा में? दुर्योधन बोला– माताजी ने कहा था, ऐसे ही आना।

श्रीकृष्ण बोले– वाह! तुम भरतवंशी मर्यादा तो न जाने कब की भूल गये। तुम दूधमुँहे बच्चे नहीं हो। तुम्हारे लड़के हैं, तुम्हारे पौत्र हैं, प्रपौत्र हैं। तुम एक शूरवीर योद्धा हो, मौत के डर के मारे माताजी के सामने नंगे जाओगे? जाओ-जाओ, बहुत प्रतीक्षा नहीं कराना चाहिए, मर्यादा तो न जाने कब की

भूल गए तुम लोग। दुर्योधन ने सोचा– कह तो ठीक ही रहे हैं। और कुछ लपेट लिया।

गांधारी ने जहाँ पट्टी खोलकर देखा, तुरन्त सब वज्र हो गया। गांधारी बोली– बेटा, यह क्या लपेट रखा है? दुर्योधन बोला– माताजी! एकदम नग्न मैं आपके सामने कैसे आता! गांधारी ने कहा– बड़ों की बात तुमने कभी मानी ही नहीं। यदि बड़ों की बात मानी होती तो यह महाभारत न होता, तुम सब भाई जिंदे होते। जाओ बेटा, उतनी जगह वैसी रह गई जैसे तुम थे। तो दुर्योधन बोला– माताजी! पट्टी खोल दूँ? गांधारी बोली– अब हमारे देखने से भी कुछ नहीं होगा, एक ही दृष्टि में हमने सारी शक्ति उड़ेल दी। तब दुर्योधन बोला– कोई बात नहीं, गदा-युद्ध कमर के नीचे नहीं जाता है।

दुर्योधन की जांघ टूट गई तो हलधर दाऊ बिगड़ खड़े हुए– भीम! तुमने नियमविरुद्ध, अनुचित मारा है, मैं तुम्हें मार डालूँगा। श्रीकृष्ण ने कहा– दाऊ! सुन तो लो। भीम ने प्रतिज्ञा की थी कि गदायुद्ध में जाँघ तोड़ूँगा। यह दुर्योधन मर जाता तब उस लाश की जांघ तोड़ता! इतनी देर युद्ध कर लिया, प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए जांघ तोड़ दिया। यह बताओ, आप प्रतिज्ञा करते तो आप क्या करते? हलधर बोले– कृष्ण! मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ। और नाराज होकर चले गए। श्रीकृष्ण बोले– जय हो दाऊ! जाओ, काम बन गया।

इसीलिए एक प्रभु की शरण में रहो, मौत जीवन में बदल जाएगी, दुःख सुख में बदल जायेंगे, शत्रु मित्र हो जायेंगे। तो–

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई।।
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही।।

(मानस, 5/4/2-3)

।। ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय।।

कहत कोऊ परदेसी की बात

ॐ जय गुरुदेवम् जय गुरुदेव!
ॐ अशरण शरण शरण प्रभु लेव,
ॐ जय गुरुदेवम् जय गुरुदेव!

बोलो श्रीराम जय राम जय सियाराम।
जय सियाराम जय जय सियाराम।।

भगवान के विषय में सोचना, उनके गुण-चरित्रों का गायन करना– ये भी भजन के अन्तर्गत आता है। हनुमानजी जब भरत से मिले तब उन्होंने कहा कि–

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती।।

(मानस, 7/1/3)

भाई भरत! रात-दिन जिनके विरह में सोचते रहते हो, निरंतर जिनके गुणों का स्मरण करते रहते हो, सज्जनों को सुख देनेवाले, देवताओं और मुनियों को शरण, त्राण देनेवाले प्रभु राम आ गये।

रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता।।

(मानस, 7/1/4)

भरत ने सुना कि 'राम आ गये', इतना सुनते ही भरत का सारा दुःख दूर हो गया। एक पल पहले भरत मृत्यु माँग रहा था कि आज यदि शरीर बच गया तो मेरे जैसा अभागा कौन!

बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना।।

(मानस, उत्तरकाण्ड, चौ.8)

चौदह वर्ष पूरा होने में एक दिन बाकी है और आज प्रभु नहीं आये तो मैं प्राण त्याग दूँगा। भरत प्राण त्यागने की स्थिति में थे, इतने में हनुमानजी

पहुँच गये। हनुमानजी ने कहा– जिनके विरह में रात-दिन घुलते रहते हो, गुण-गणों की पंक्ति का चिंतन-सुमिरण करते रहते हो वो प्रभु आ गये। इतना सुनते ही–

सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ पियूषा॥

(मानस, 7/1/6)

इतना वचन सुनते ही सारा दुःख दूर हो गया, प्यास से पीड़ित मनुष्य मानो अमृत पा गया। इसी तरीके से हर भक्त की यही दशा होती है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने गँवार, अनपढ़ बाल-ग्वाल, ग्वालिनों सबको जगा दिया। ईश्वर की रात-दिन चर्चा, रासलीला, संकीर्तन, नृत्य....। आपके हृदय में भगवान् का छिपा हुआ स्वरूप रहस्यमय है। उस रहस्य को उद्‌घाटित करना रासलीला है। सब आत्मायें जग गयीं, गोपियाँ कृष्णमय हो गयीं। ग्यारह वर्ष और कुछ महीने की उम्र में जब श्रीकृष्ण मथुरा चले, गोपियाँ रास्ते में लेट गयीं।

कंस ने कहा– किसी तरीके से नन्द का छोरा नहीं मर रहा है। अघासुर, बकासुर इत्यादि सब मारे गये। उसे मेरे पास लाओ, मैं उसे अपनी बलिष्ठ भुजाओं से मसलकर मार डालूँगा। अक्रूर को भेजो, उस पर विश्वास करेगा।

जब अक्रूर श्रीकृष्ण को लेकर चले तो सब गोपियाँ रास्ते में लेट गयीं– कन्हैया! तुम्हारे वियोग में हम जीवित नहीं रह सकतीं। जिन्दों को दुःख होता है, मुर्दों को नहीं होता। तुम रथ हमारे ऊपर से ले जाओ, हम मर जायें तो तुम जाओ।

तब भगवान श्रीकृष्ण रथ से उतरे, मुस्कराये, बोले– यह बताओ, तुम ननिहाल गयी हो कि नहीं? गोपियाँ बोलीं– गयी तो थीं...। श्रीकृष्ण बोले– तुम इतनी निष्ठुर, निर्दयी हो! मैं ग्यारह साल दो महीने का हो गया, अब तक ननिहाल नहीं गया, मामा की गोद में नहीं खेला। कंस मामा की गोद में खेलकर पन्द्रह दिन में लौट आऊँगा। क्या मुझे अधिकार नहीं है मामा की गोद में खेलने का!

गोपियाँ बोलीं– कहता तो ठीक ही है... लेकिन पन्द्रह दिन में आ जाओगे?? श्रीकृष्ण बोले– जरुर...। मैंने कभी झूठ बोला है! गोपियाँ बोली– नहीं तो!

श्रीकृष्ण चले गये मथुरा, लौटकर कभी नहीं आये। अब गोपियाँ पागल हो गयीं। भूल गयीं माता-पिता, पुत्र-पति, दूध-दही, मक्खन-मलाई। करील के कुंजों में 'हे कृष्ण', 'हे गोविन्द', 'हे मोहन'... खप्तुलहवाश हो गयीं। गोकुल से मथुरा की दूरी कोई ज्यादा तो नहीं है। भगवान् ने कहा– आऊँगा, नहीं आये लेकिन गोपियाँ टेक की पक्की थीं, जा नहीं सकती थीं। आना है तो कन्हैया आवे, वह परदेसी हो गया।

राधा मिली, उनको भी भगवान ने आश्वासन दिया और बढ़ चले। आश्वासन महीने-पन्द्रह दिन का था। अब गोपियाँ घबड़ा गयी कि आया क्यों नहीं? राधा विकल हो गयी कि कन्हैया आया क्यों नहीं! इधर-उधर पूछने लगी-

कहत कोऊ परदेसी की बात।
जब से बिछुरे नन्द साँवरे, नहिं कोउ आवत जात।।
कहत कोऊ परदेसी की बात...

शशि रिपु बरस, भानु रिपु जुग सम, हर रिपु कीन्हे घात।
अजया भख अनुसारत नाहीं, कैसे दिवस सिरात।
कहत कोऊ परदेसी की बात...

मन्दिर अरध अवधि हरि बदि गये, हरि अहार चलि जात।
मग पंचक लै गयो साँवरो, ताते जिय अकुलात।।
कहत कोऊ परदेसी की बात...

वेद नखत ग्रह जोरि अरध करि, सोई बनै अब खात।
सूर स्याम बिन बिकल राधिका, कर मीजत पछतात।।
कहत कोई परदेसी की बात...

कहत कोऊ परदेसी की बात।

जो कन्हैया परदेस चले गये, कोई उनका हालचाल बता दो।

मानस में आता है– कागभुसुण्डि ने गरुड़जी से अपना परिचय देते हुए कहा–

तेहिं कलिकाल बरष बहु बसेउँ अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपति बस तब मैं गयउँ बिदेस।। (मानस, 7/104ख)

वे अमेरिका नहीं चले गये थे। फैजाबाद, अयोध्या से लेकर,

गयउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी।।

(मानस, 7/104/1)

उज्जैन चले गये थे। वह स्टेट दूसरी थी, उज्जैन का राजा दूसरा था, वो हो गया परदेस। तो कंस की राजधानी थी विदेश। परदेस की परिभाषाएं बड़ी करीब-करीब थीं। यहाँ से देशनिकाला मिला, रीवा चला गया तो परदेश। उनको मिला तो यहाँ चले आये.... परदेश। तो 'कहत कोउ परदेसी की बात'।

हालांकि था सोलह ही किलोमीटर, परदेश हो गया। मथुरा वृन्दावन-गोकुल से अधिक से अधिक दस-पन्द्रह किलोमीटर है, वहीं गये हैं। रोज ग्वाले वहाँ दूध बेचने जाया करते थे। राधा ठान लेती तो दो घड़ी में पहुँच जाती, लेकिन भगवान ने आश्वासन दिया था कि तुम यहाँ प्रतीक्षा करना। वह आज्ञाकारी भक्त थी। गोपियाँ, राधा इत्यादि टेक पर मरने मिटनेवाली थीं, जा तो नहीं सकती थीं, आज्ञा का उल्लंघन होगा। तो ये जहाँ-तहाँ आँखें खोलकर देखने-ताकने लगीं और जो दिखाई पड़ा, उसी से पूछने लगीं– परदेसी कन्हैया, जो परदेस चला गया, उनका कोई हाल-चाल बताओ।

कहत कोऊ परदेसी की बात।
जब से बिछुरे नन्द साँवरे, नहिं कोउ आवत जात।।
कहत कोऊ परदेसी की बात...

जब से नन्द बाबा का वो करियवा (भगवान श्रीकृष्ण) बिछड़ गया

(साँवरा माने काला ही तो होता है), तब से उधर से कोई आता भी नहीं, जाता भी नहीं, अब कैसे पता लगायें।

और दिन काटना मुश्किल हो गया है–

शशि रिपु बरस, भानु रिपु जुग सम, हर रिपु कीन्हें घात।
अजया भख अनुसारत नाहीं, कैसे दिवस सिरात।
कहत कोऊ परदेसी की बात...

'शशि रिपु....'-

भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई॥

(मानस, 6/34/4)

चन्द्रमा दिन में भी रहता है पर कोई मतलब नहीं, कोई प्रकाश नहीं, उसका कोई उपयोग नहीं। तो शशि का शत्रु = दिन; तो दिन वर्ष के समान। एक-एक दिन एक-एक वर्ष जितना बड़ा हो गया, काटने से नहीं कट रहा है तो **'ससि रिपु बरस'**।

'भानु रिपु युग सम'– सूर्य का शत्रु रात्रि है, राहु है। राहु.... राह देखते-देखते आँख पथरा गयी है। यही राहु है जो राह में अवरोध उत्पन्न करे। तो **'ससि रिपु बरस भानु रिपु युग सम'**– दिन तो बरस के समान और रात्रि युग के समान हो गयी। और,

'हर रिपु कीन्हे घात'– शिव का शत्रु कामदेव अर्थात् प्रकृति की अनन्त कामनायें। राधा, गोपियों में कोई कामना नहीं किन्तु प्राप्ति की कामना, इच्छा जरूर थी। **'इच्छा राखे मोक्ष की ताहि शिष्य पहिचान'।**

गीता निष्काम कर्मयोग है। अर्जुन! सभी कामनायें वर्जित हैं किन्तु–

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥ (गीता, 12/9)

अर्जुन! मेरी प्राप्ति के लिए इच्छा कर। यह कामना, यह इच्छा जरूरी है। जब प्राप्ति की इच्छा ही नहीं है तब भजन में मन कैसे लगेगा?, किसका

भजन करोगे?, कैसे राह पाओगे? तो **'हर रिपु कीन्हे घात'**– शंकरजी का शत्रु काम, वह तो जल गया, फिर भी मन में प्राप्ति की इच्छा रहती है। यदि कामना ही न होती तो हम कन्हैया के लिए क्यों रोते? जब मतलब ही नहीं तो कैसे रोओगे? आदिवासी जंगल में पड़े हैं, बम्बई जाने के लिए, होटल खोलने के लिए कभी रोते हैं क्या! जब उन्हें मालूम नहीं, उस विषय का ज्ञान नहीं। लेकिन जो प्राप्ति की इच्छा, कामना जागृत हो गयी तो **'हर रिपु कीन्हे घात'**- अर्थात् प्राप्ति की इच्छा अहर्निश बनी रहती है।

और खबर लेने का दूसरा साधन होता है– चिट्ठी-पत्री।

अजया भख अनुसारत नाहीं, कैसे दिवस सिरात।।
कहत कोऊ परदेसी की बात।

'अजया'– अजा माने बकरी होती है। बकरियों का भक्षण होती है पाती। पाती = चिट्ठी-पत्री भी तो कहीं से नहीं खटकती दिखाई पड़ती कि कुछ खबर मिले कि कन्हैया को खाने को मिलता है कि नहीं, माखन मिलता है कि नहीं, सेवा में कौन है? उन्हें चिन्ता थी श्रीकृष्ण की सुरक्षा की, श्रीकृष्ण के खान-पान, रहन-सहन की, क्योंकि प्रबंधक यहाँ गोपियाँ ही तो थीं।

'अजया भख' अर्थात् बकरी का भक्षण पत्ती = पाती = चिट्ठी-पाती भी तो नहीं दिखाई पड़ती। वह भी मिल जाती तो कुछ दिन उसका ही अनुसरण करते कि चिट्ठी में आया है, थोड़ा काम उलझ गया है, चार दिन बाद फिर आ जायेंगे। **'अजया भख अनुसारत नाहीं'**– अब वो भी ढाँढ़स नहीं बँधा रहा है कि भाई, चिट्ठी आ जाये कि गोपियाँ! धीरज धरो, दस दिन और छुट्टी दो। ऐसा आश्वासन, ऐसा ढाँढ़स भी नहीं मिला, अब दिन कैसे कटे–

'कैसे दिवस सिरात।
कहत कोउ परदेसी की बात'।

और भगवान ने केवल पन्द्रह दिन का समय दिया कि मैं पन्द्रह दिन में, एक पखवाड़े में आ जाऊँगा।

मन्दिर अरध अवधि हरि बदि गये, हरि अहार चलि जात।
मग पंचक लै गयो साँवरो, ताते जिय अकुलात।।
कहत कोऊ परदेसी की बात...

'**मन्दिर अरध**' माने एक पाख, एक पक्ष हो गया। दो पक्ष होते हैं– शुक्ल पक्ष, कृष्ण पक्ष; एक पखवाड़ा यानि पन्द्रह दिन। '**मन्दिर अरध**'– मन्दिर का आधा = पखवाड़ा होता है, मतलब एक पाख में, एक पखवाड़े में, '**अवधि हरि बदि गये**'– बस इतने ही समय के अन्तर में मैं अवश्य पहुँच जाऊँगा।

'**हरि अहार चलि जात**'– केहरि माने सिंह। सिंह का आहार है मांस। मास का मतलब महीना। आज महीना बीत गया, '**हरि आहार चलि जात**'। तो जाने दो, छलिया जब इतना बात का झूठा है, छलिया इतना बतझूठ है तो क्यों पीछे पड़ी हो? तो गोपियाँ बोलीं– वो भी नहीं छूट सकता।

मग पंचक लै गयो साँवरों, ताते जिय अकुलात।

'**मग पंचक**' अर्थात् मघा से पाँचवें नक्षत्र तक। 1. मघा, 2. पूर्वा, 3. उत्तरा, 4. हथिया, 5. चित्रा...., मघा से पाँचवाँ नक्षत्र चित्रा होता है। चित्रा अर्थात् चित्तवृति। हमारे चित्त को साँवरा बाँधकर अपने साथ ले गया। अब बगैर चित्त के, बगैर मन के कोई कैसे जियेगा इसलिए जी घबड़ा रहा है। किसी-किसी का मन साथ छोड़ देता है, कपड़े फेंक देता है, नींद भी नहीं आती, पागल हो जाता है। चित्त भ्रमित होते ही, बुद्धि का संतुलन खोते ही मनुष्य पागल हो जाता है। तो '**मघ पंचक**'– मघा नक्षत्र... मघा से पाँचवाँ नक्षत्र होता है चित्रा। अर्थात् चित्त को, चित्रा को, चित्त की चित्रण करने की जो क्षमता है, भगवान उस चित्तवृत्ति में चित्रित हो गये, दूसरा कोई आ भी नहीं सकता। चित्त को साँवरा कैद करके, नाथ करके अपने साथ ले गया, अब बगैर चित्त के कोई कैसे जियेगा, कैसे सोयेगा, कैसे जागेगा? '**ताते जिय अकुलात**'– इसलिए हर समय जिय अकुलाता रहता है। कोई तो बता दे, '**कहत कोउ परदेसी की बात**'।

अब जीने का मन नहीं करता है। मन करता है, जहर खाकर आज मर जायें, तो,

वेद नखत ग्रह जोरि अरध करि, सोई बनै अब खात।
सूर स्याम बिन बिकल राधिका, कर मीजत पछतात।।
कहत कोई परदेसी की बात...

वेद, नक्षत्र, ग्रह जोड़कर आधा करने पर बीस होता है। वेद चार, नक्षत्र सत्ताईस, और ग्रह नौ, कुल जोड़ हो गया चालीस। वेद, नक्षत्र, ग्रह– इन सबको जोड़कर अर्ध करो तो बीस। '**वेद नखत ग्रह जोरी अरध करि, सोई बनै अब खात**'– बीस अर्थात् विष खाते बन रहा है, और कोई रास्ता बचा ही नहीं। विष ही हमें इस चिंता, इस घुटन से मुक्ति देगा।

राधा प्राण त्यागने को तैयार। '**सोई बनै अब खात**' अर्थात् विष खाते बन रहा है, तभी इस दुःख से पिण्ड छूटेगा।

सूर स्याम बिनु बिकल राधिका, कर मीजत पछतात।

श्याम के बिना राधा विकल, बेचैन हाथ मल रही है और पछता रही है कि '**कहत कोउ परदेसी की बात**'।

भगवान ने जो शर्त दे दी कि 'प्रतिक्षा करो', उस समय से राधा चिंतन में, मनन में, गुणानुवाद में लगी ही रह गयीं। परिणाम ये निकला, जब भक्तों की परीक्षा हुई तो राधा सर्वोपरि भक्त की लिस्ट में आ गयी। भगवान श्रीकृष्ण के जितने सर्वोपरि भक्त थे, उनमें पहला नम्बर अर्जुन का नहीं था, एक उतथ्य था, उसका था, पहला नम्बर रूक्मिणी, सत्यभामा का नहीं था, राधा और गोपियों का था।

एक समय महारानी रुक्मिणी को ये आभास हुआ कि मेरे जैसा भक्तशिरोमणि कोई नहीं। और इस कमजोरी का पता नारदजी को लग गया। नारदजी ने कहा– रुक्मिणी जी! आप अकारण नाज कर रही हैं। भगवान श्रीकृष्ण के हृदय में जो स्थान गोपियों का है, राधा इत्यादि का है, उसका

दसवाँ अंश भी आप पटरानियों का नहीं है। रुक्मिणी बोली– नहीं नारदजी! वो गँवार ग्वालिन, उपली पाथनेवाली, दिनभर दूध-दही-मक्खन चलानेवाली, कपड़ों में छीटें लगी हैं, दुर्गन्ध आती है, और मैं मूर्धाभिषिक्त नरेश की कन्या, महाराजा भीष्मक की कन्या...! यदि तपस्या ही न होती तो प्रभु हरण करके लाते क्यों? यह मेरे तपस्या का प्रभाव था। वह यह नहीं कह रही है कि दया करके ले आये, कह रही है– हमारी तपस्या का प्रभाव है।

नारद बोले– कुछ भी कहो रुक्मिणी जी, सभा-सोसाइटी में, इष्ट-मित्रों में आज तक कभी आप पटरानियों का नाम सुनने को मिला नहीं। जब देखो तब गोपियाँ-गोपियाँ, राधा-राधा....। जब श्रीकृष्ण गोपियों का नाम लेते हैं तो अश्रु स्त्रवित हो जाते हैं, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। आज तक आप पटरानियों का नाम सुनने में आया तो नहीं।

बस.... नारद ही थे, चाभी भर दिया, झगड़ा लगा दिया। रूक्मिणीजी ने मुँह फुला लिया, बाल बिखरा दिया, हार आँगन में फेंक दिया ताकि सब देखें कि ये नाराज हो गयी है। कहीं दुपट्टा फेंका, कहीं पायल। ऊपर-नीचे जितना ताम-झाम पहना था, सब फेंका और फुँफकारती नागिन की तरह कोपभवन की ओर चली।

भगवान श्रीकृष्ण की नजर पड़ी, बोले– ओह, अजीब दृश्य है, कहीं नारद से तो भेंट नहीं हो गयी? लोग बोले– हाँ भगवन्! रुक्मिणीजी और नारदजी का बड़ा लम्बा सत्संग हुआ। श्रीकृष्ण बोले– तब जल्दी करो, कुछ कम्बल लाओ, एकाध रजाई लाओ। और ओढ़कर सो गये।

बचपन से तो नाटक किये थे, कोई दवाई छुआ लिया, बुखार चढ़ गया, शरीर पूरा लाल हो गया, एक सौ पाँच डिग्री तापमान। वैद्य-डॉक्टर सब असफल, अब नहीं बचेंगे, प्राण संकट में है। यूँ समझो प्राण है ही नहीं, जितने पल हैं आपके साथ....। तब रुक्मिणी ने सोचा– जिनके लिए मैं कोपभवन में जा रही हूँ, अब-तब लगा है, वैद्यों ने जबाब दे दिया है। पहले वे ठीक हो जायँ, तब कोपभवन में जाऊँगी।

नारद भी भागते हुए आये– प्रभो! हुआ क्या? श्रीकृष्ण बोले– नारदजी! मैं भाग्यशाली हूँ। अन्तिम क्षणों में आप ऐसे महापुरुष मेरी पलकों के सामने हैं, मैं भाग्यशाली हूँ। अंतिम समय है नारद। नारद बोले– ऐसा मत कहिए प्रभो! कोई तो उपाय होगा? श्रीकृष्ण बोले– नहीं। मस्तिष्क ज्वर हो गया है, इसका इलाज निकला ही नहीं, मौत छोड़कर कुछ नहीं।

नारद बोले– अच्छा भगवन्! कोई तो उपाय होगा? श्रीकृष्ण बोले– इलाज तो नहीं है, उपाय है। लेकिन मेरी इतनी तकदीर कहाँ कि सिद्ध हो जाय, सफल हो जाय। नारद बोले– उपाय क्या है? तो श्रीकृष्ण बोले– मुझमें श्रद्धा रखनेवाली कोई रानी अथवा कोई भी अपना पवित्र चरणधूली दे दे, उसको मैं अपने सिर पर मल लूँ, उस पुण्य से प्राण बच सकते हैं। नारद! दवाई-इलाज तो नहीं बचा।

नारद तुरन्त घूम गये रूक्मिणी की तरफ, सत्यभामा, जामवंती की तरफ कि भगवान जियेगें, भगवान रहेंगे, खुशी मनाओ। लाओ चरणधूली....। सब पीछे हट गयीं, बोलीं– इनकी चरणधूली हमारे सिर पर। अपनी क्षुद्र धूल इनके सिर पर डालने को कैसे दे दें? उससे हमारा परलोक नष्ट हो जायेगा। नारद बोले– मर जायेंगे तो वैधव्य झेलना पड़ जायेगा। रानियाँ बोलीं– नारद जी! मृत्युलोक है, कर्मों का लिखा तो भोगना ही पड़ता है....। और चरणधूली नहीं दिया।

अब भगवान ने और भी टेढ़ा-मेढ़ा मुँह बनाया जैसे अब प्राण गये कि तब। भगवान बोले– नारदजी! वृन्दावन चले जाओ, शायद किसी को मुझ पर तरस आ जाय, दया आ जाय। जल्दी करो।

नारद सीधे वृन्दावन पहुँचे। करील के कुंजों में राधिका के संरक्षण में गोपियाँ उस समय कीर्तन में तन्मय होकर भजन कर रही थीं– हे कृष्ण, हे गोविन्द, हे मोहन, हे मुरारी...। कीर्तन एकाध घण्टा जरूरी होता है, ये भजन की लड़ी-कड़ी है। नारद को देखा तो सब खड़ी हो गयीं, सादर प्रणाम किया, बोली– देवर्षि! आप तो भ्रमणशील हैं, कहीं हमारे कन्हैया को देखा? नारद

बोले– देखा है। गोपियों ने पूछा– कैसे हैं कन्हैया? उन्हें माखन मिलता है कि नहीं? उनकी देखरेख कौन कर रहा है?

नारदजी बोले– अभी तो ठीक हैं, लौटकर जाने पर भेंट हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती है। उन्हें मस्तिष्क ज्वर हो गया है, डॉक्टरों ने जबाब दे दिया है कि नहीं बचेंगे।

राधा बोली– फालतू बात नहीं नारद जी, कोई सेवा हो तो बताइए। नारद बोले– प्रभु ने चरणधूली मांगा है। वृन्दावन में रेती तो पहले से ही थी, सब गोपियाँ चरण को रमणरेती में पीटने लगीं कि बगैर छुआ कण न चला जाय अन्यथा इन महापुरुष को मिट्टी ढोना पड़ेगा, हमें पाप लगेगा। आज्ञापालन में कोई दोष नहीं, महापुरुष दब जायं, कोई चिन्ता नहीं।

ठोंक-ठाक के चीनीवाला बोरा भरा, बाँधकर सबने उठाकर नारदजी के सिर पर रख दिया, बोलीं– ल्यो चरणधूली, जाओ। तो नारद ही ठहरे, बोले– अरे, भगवान इस चरणधूली को, तुम लोगों के चरणों की धूल को अपने सिर पर रखेंगे, उससे तुम लोगों का परलोक नष्ट हो सकता है, तुम रौरव नरक में जा सकती हो। राधा ने कहा– नारदजी! प्रभु जियें, खुश रहें, ऐसे ही प्रसन्न मुद्रा में मुस्कुराते हुए दुनिया का, संसार का, जनमानस का कल्याण वैसे ही करते रहें, जैसे करते आये हैं, सदा रहें। हम अनन्त काल तक रौरव नरक में पड़ी रहें, लेकिन हमारे प्रभु जियें। व्यर्थ की बातों में समय नष्ट ना करें नारद जी! जितना आप बातों में समय नष्ट करते हो, उतना ही मेरे प्रभु को वहाँ कष्ट होता होगा, जल्दी जाओ।

अब ये वीणा ढोनेवाले बाबा जी.... चीनी का बोरा तो कभी उठाया ही नहीं था, उठाया सिर पर। नारदजी कोई पल्लेदार तो थे नहीं, और भेंट हो गयी चीनीवाला बोरा से, वो भी मिट्टी भरी। किसी तरीके से पहुँच गये। गर्दन टेढ़ी हो गयी, पसीने में लथपथ ले जाकर पटका, बोले– लो आपन चरणधूली....। भगवान श्रीकृष्ण उछलकर खड़े हो गये, सारा गर्दा अपने ऊपर डाल लिया, बोले– नारदजी! इन पटरानियों का और गोपियों का क्या मुकाबला!

गोपियाँ मेरी आत्मा हैं। मै उनमें हूँ, वो मुझमें हैं। मेरी चरणधूली उनकी चरणधूली है, और उनकी चरणधूली मेरी चरणधूली है। वो मेरे स्वरूप में स्थित हैं। इन रानियों को परलोक की चिन्ता लगी है, हो सकता है इनको एक-दो जन्म और भजन करना पड़े। भला गोपियों का इन पटरानियों से क्या मुकाबला!

रूक्मिणीजी की गर्मी ही ठण्डी पड़ गयी। पहले तो भक्तशिरोमणी बनकर, पोजिशन बनाकर घूमा करती थीं, चाय-पानी कुछ नहीं देखती थीं। उस दिन से समय से झाड़ू लगाने लगीं, सेवा करने लगीं। नारद आये थे घर बिगाड़ने, घर और भी सुधर गया। कोई आपका घर बिगाड़ दे तो उससे छः महीना नहीं बोलोगे, और भगवान ने कहा– नारद जी! हमारा अहोभाग्य आप ऐसे महापुरुष मेरे पलकों के सामने हैं। और ऐसी जगह भेज दिया कि नारद सजा भी पा गये, मन भर का बोझ सिर पर ढोना पड़ा।

भगवान के यहाँ अपना-पराया नहीं होता। श्रद्धापूरित हृदय से भगवान का सुमिरन करो। चाहे वृन्दावन रहो चाहे घर में, मन सदैव चरणों के आजू-बाजू घूमता रहे, ये है स्मरण। इस प्रकार जो सतत् स्मरण करता है अर्जुन! मैं उन्हें बुद्धियोग प्रदान करता हूँ। वह बुद्धि देता हूँ जो योग-साधना की जागृति करा मुझसे मिलन करा देता है इसलिए अहर्निश भगवान का स्मरण बना रहे, चलते-फिरते, उठते-बैठते, खुरपी चलाते..... जीवन के हर मोड़ में प्रभु का नाम याद आता रहे।

॥ ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय॥

मन तुम नाहक धुन्ध मचाये

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरु तं नमामि॥

कबीर वे नर अन्ध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रुठे गुरु ठौर है, गुरु रुठे नहिं ठौर॥

!! बोलिए श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय !!

सुप्रीम कोर्ट कह रहा है, हिन्दू कोई धर्म ही नहीं है। सभी चुप्पी साधकर बैठे हैं, उत्तर किसी के पास नहीं है। कुछ नेता लोग कह रहें हैं कि सुप्रीम कोर्ट का फैसला बिल्कुल ठीक है कि हिन्दू कोई धर्म नहीं है, ये तो एक जीवनयापन शैली है, जीवनयापन का तौर-तरीका है और कुछ नहीं है। तू ठीकरों में खा, तू तर माल खा, बस यही है, और कुछ नहीं। ये तो व्यवस्था है, कभी टूटती है, कभी जुड़ती है। एक मखौल बनाकर रख दिया।

वास्तव में यदि धर्म है तो भारत में, धर्मशास्त्र है तो भारत में। श्रीरामचरितमानस में तुलसीदासजी ने बहुत कम शब्दों में नपा-तुला उत्तर दिया– इस सृष्टि में धार्मिक कौन है?, और धर्म होता क्या है? तो–

धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता॥

(मानस, 7/126/2)

वह पूरा का पूरा कुल धर्मपरायण है, भगवान राम के चरणों में जिसका मन अनुरक्त है।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना॥

(मानस, 7/126/3)

दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई॥

(मानस, 7/48/8)

वह नीति-निपुण है, वेदों का सिद्धान्त भली प्रकार उसने जान लिया है, वह क्रिया में दक्ष है। कौन? कि **'राम चरन जा कर मन राता।'**– राम- एक परम प्रभु के चरणों में जिसका मन अनुरक्त है।

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥ (मानस, 7/127)

हे पार्वती! वह कुल ही कृतार्थ है जिस कुल में किसी एक का राम- उन परम प्रभु - के चरणों में अनुराग पैदा हो गया हो। बस इतना ही कुल धर्म है। तो–

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान॥ (मानस, 7/78क)

एक परमात्मा के भजन के बिना जो कल्याण चाहता है, बगैर सींग-पूँछ का पशु है। उसमें और पशु में कोई अन्तर नहीं है। सींग नहीं जमी है, पूँछ नहीं लटकी है, पक्का पशु है। भला महापुरुष इससे ज्यादा अपने स्वजनों को कितनी ताड़ना दें! लड़का जब पढ़ने में कमजोर होता है तो माता-पिता, घरवाले कहते हैं– तू गधा है, तू बैल है...। और क्या कहेंगे! घर से निकाल तो देंगे नहीं। अतः भजन एक परमात्मा का।

राम-रावण युद्ध अन्तिम चरण पर था। रावण कुछ लड़खड़ाया, तब देवता करीब आ गये। पहले दूर से, आकाश से दृश्य देख रहे थे, अब करीब आ गये और बोले– 'जय हो, जय हो'। रावण ने कहा– ठहरो! नमक हमारा खाते हो और जय रामजी की चाहते हो! तुम्हारी भाव-भंगिमा से प्रतीत हो रहा है, तुम मेरी विजय नहीं चाहते, तुम रामजी की विजय चाहते हो। ठहरो, मैं तुम्हीं से हिसाब चुकता कर लेता हूँ।

रावण झपटा, देवता लोग आकाश में चारों तरफ बटेर की तरह छितरा गये। प्रभु राम ने बाण मारकर रावण को उतारा, युद्ध हुआ। रावण जब धराशायी हो गया तब देवता करीब आ गये और लगे स्तुति करने-

कृतकृत्य बिभो सब बानर ए। निरखंति तवानन सादर ए॥

धिग जीवन देव सरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे।।

(मानस, 6/110 छन्द)

ये वानर कृतकृत्य हैं, ये वानर मोक्ष-प्राप्त हैं जो आपकी सेवा में काम आये। हम देवताओं के शरीर को धिक्कार है जो आपकी भक्ति के बिना आवागमन के चक्कर में भूले पड़े हुए हैं– '**भव भूलि परे**'। स्वयं कहीं भूला हो और उससे कहो रास्ता बता दे! खुद क्यों नहीं रास्ता पकड़ लेता है!! देवता तो खुद ही दुःखी तो हैं, तुम्हें सुख कहाँ से दे देंगे!

भव प्रबाहँ संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे।।

(मानस, 6/109/12)

'**भव प्रबाहँ**'– आवागमन के प्रवाह में हम निरन्तर बहते चले जा रहे हैं, प्रभो! अब आपकी शरण आये हैं। तो जो खुद भव के प्रवाह में बह रहे हैं, परम दुःख भी वहाँ विद्यमान है, बहुत दुःखी हुए तो भगवान से प्रार्थना-स्तुति किया, भगवान प्रकट हो गये, दुःख दूर भी किया। तो भजन एक परमात्मा का।

दो हजार वर्षों से समुद्र पार जाने से सनातन धर्म नष्ट हो रहा था। और सारे के सारे वानर समुद्र पार गये तो देवता स्तुति करते हैं–

कृतकृत्य बिभो सब बानर ए। निरखंति तवानन सादर ए।।

ये वानर कृतकृत्य हैं जो आपकी सेवा में काम आये, आपके मुखारविन्द का दर्शन कर रहे हैं और दृष्टि स्थिर किये हुए हैं।

कहना चाहिए था कि समुद्र पार आ गये तो बहिष्कृत! इनका धर्म नष्ट हो गया!! सीताजी पार गयीं तो रात-दिन आरती कर रहे हैं, हनुमानजी ने तो आने-जाने का सिलसिला लगा दिया, कभी संजीवनी कभी कुछ तो 'जय हनुमान ज्ञान गुण सागर'... रट लगा दिया, और हम पार चले जायें तो धर्म नष्ट!

कुछ लोग खाने-पीने-छूने से धर्म की परिभाषा देते हैं। खाने में है क्या! तो कंद-मूल और फल। ये बवाल क्या है? जमीन में जो जामता है, वह नहीं खाते? अनन्त काल से महापुरुष लोग मूल, फल खाते रहे हैं, कन्द-मूल खाते

रहे हैं। जो जड़ में पैदा हो, मुलायम हो, उसको मूल कहते हैं, कन्द-मूल कहते हैं। महापुरुष तो कन्दमूल, फल खाकर सप्तर्षि, ब्रह्मर्षि हो गये, और हम खायें तो धर्म नष्ट!

धर्म का उतार-चढ़ाव मन पर है, और मन की साधना ऐसी भयंकर बना डाला, संत कबीरदासजी ने कहा-

मन तुम नाहक धुन्ध मचावे।

करि स्नान छुओ नहिं काहू, पत्ती फूल चढ़ाये।
मूरति से दुनिया फल माँगे, अपने हाथ बनाये।।
मन तुम नाहक धुन्ध मचावे।

ये जग पूजे देव देहरा, तीरथ ब्रत नहवाये।
चलत फिरत में पाँव थकत भे, ये दुख कहाँ समाये।।
मन तुम नाहक धुन्ध मचावे।

झूठी काया झूठी माया, झूठे जूठन खाये।
बाँझिन गाय दूध नहिं देवे, माखन कहाँ से पाये।।
मन तुम नाहक धुन्ध मचावे।

साँचे के सँग साँच बसत है, झूठे मारि हटाये।
कहै कबीर जहाँ साँच वस्तु है, सहजे दर्शन पाये।।

- - - - - -

मन तुम नाहक धुन्ध मचाये।

रे मन! व्यर्थ में तू धुन्ध मचाये पड़ा है, कल्पना करके साधना खड़ी कर लिया? धुन्ध जानते हो? धुन्ध हिमालय में है, एकदम धुन्ध मच जाता है, हाथ नहीं दिखाई देता। जब जाड़े में कभी-कभी धुन्ध छा जाता है, सड़कों पर दुर्घटनायें होने लगती हैं। कितना भी तेज लाइट जलाओ, पाँच फीट की दूरी पर आगे नहीं दिखाई पड़ता, इसका नाम है धुन्ध। और हृदय में धुन्ध मचाता है मन, तो-

मन तुम नाहक धुन्ध मचाये।

करि स्नान छुओ नहिं काहू, पत्ती फूल चढ़ाये।।
मन तुम नाहक धुन्ध मचाये।

स्नान कर लिया तो 'हमको छूना मत-छूना मत'। किया क्या? जाकर किसी पत्थर पर पत्ती चढ़ा दिया, फूल चढ़ा दिया।

मूरति से दुनिया फल माँगे, अपने हाथ बनाये।।
मन तुम नाहक धुन्ध मचाये।

मनुष्य खुद ही मूर्ति बनाता है, फिर हाथ जोड़कर बैठ जाता है कि हमें फल दो।

एक कलाकार एक पत्थर लाया और उसको काटकर दो टुकड़ा कर दिया। एक टुकड़े को तराश कर हनुमानजी तैयार कर लिया, दूसरा गढ़कर बनानेवाला था इतने में यादव खरीददार गया, दोनों खरीद लिया। कलाकार बोला– भाई! इसको मैं गढ़कर बनाऊँगा। यादव बोला– वैसे ही दे दो, पैसा ले लो।

उसने हनुमानजी को तो मन्दिर में स्थापित कर दिया, और दूसरे को मन्दिर के आगे गाड़ दिया, उसमें भैंस बाँधा करे, गोबर का झऊआ रखा करे, और भीतरवाले हनुमान पर अबीर, सिन्दूर, गरी-बतासा, और '**जय हनुमान ज्ञान गुन सागर। जय कपीस तिहुं लोक उजागर।।.....**', '**बाल समय रवि भक्ष लियो तब तीनहुं लोक भयो अंधियारो।।.....**' स्तुति की झड़ी लगी रहे, दिनभर लाइन लग गयी। तब हनुमानजीवाले पत्थर में से आवाज आई– कहो भैया! हम सगे भाई हैं। एक साथ जन्मे, एक पत्थर से निकले, एक साथ कटकर अलग हुए, तुम्हारी क्या दुर्दशा है! भैंस पेशाब करती है, गोबर करती है, यादवजी ऊपर झऊआ रख देते हैं, बैठ जाते हैं; और हमको अगरबत्ती, धूप, जोत, लड्डू, पेड़ा, मिठाई चढ़ रही है, आरती पर आरती हो रही है, बात क्या है? तो बाहरवाले पत्थर में से आवाज आई, बोला– भैया! तुमको गुरु मिल गया, उस्ताद मिल गया, इसके मारे तू माल छानत है, और हमें गुरु नहीं मिला।

सब घट मेरा साँइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी घट तासु की, जा घट परगट होय॥

इतना ही फर्क है, और कोई फर्क नहीं।

ये जग पूजे देव देहरा, तीरथ ब्रत नहवाये।
चलत फिरत में पाँव थकत भे, ये दुख कहाँ समाये॥

तीर्थ नहाये, व्रत नहाये,

चलत फिरत में पाँव थकत भे, ये दुख कहाँ समाये॥

चलने-फिरने में पाँव थक गये, भला ये दुःख कहाँ समाये!

मन तुम नाहक धुन्ध मचाये।

रे मन! व्यर्थ में तुमने धुन्ध मचा रखी है। ये मन का बनाया हुआ है।

झूठी काया झूठी माया, झूठे जूठन खाये।

यह काया झूठी है, माया झूठी है, झूठा रूपक बनाया है।

झूठ माया, झूठी काया, झूठे जूठन खाये।

उनका जूठन खाता है और कहता है, प्रसाद हो गया।

बाँझिन गाय दूध नहिं देवे, माखन कहाँ से पाये॥
मन तुम नाहक धुन्ध मचाये।

बाँझ गाय है, दूध बिल्कुल नहीं दे सकती तो माखन कहाँ से मिलेगा? माखन की आस लगाये बैठा है! एक तोला दूध तो मिलेगा नहीं और कल्याण की आस लगाये है, मोक्ष की आस लगाये है। कितना भी अगरबत्ती जलाओ न!

साँचे के सँग साँच बसत है, झूठे मारि हटाये।

यदि तुम्हारा मन शुद्ध है, सत्यनिष्ठ है तो वही सत्य बसता है। जो झूठा है, अनित्य है, नश्वर है, उसे भगवान के दरबार में जगह नहीं मिलती।

कहै कबीर जहाँ साँच वस्तु है, सहजे दर्शन पाये॥
मन तुम नाहक धुन्ध मचाये।

संत कबीरदासजी कहते हैं– मन में जिस क्षण सत्य प्रवाहित हुआ, **'सहजे दर्शन पाये'**– श्रम न करना पड़े और दर्शन हो जाये, स्वाभाविक दर्शन हो जाये, इसलिए

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई।।
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना।।
भूत दया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई।।
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।।

(मानस, 7/125/4-7)

'तीर्थाटन'– सारे तीर्थों का भ्रमण, सारे साधनों का समुदाय, **'ग्यान बिग्यान जोग'** सभी कर्म, धर्म, व्रत, दान, प्राणियों पर दया, गुरु-द्विज की सेवा.... जहाँ तक साधन वेदों में है, सबका फल हरि की भक्ति है। वह भक्ति सद्‌गुरु की कृपा से ही प्राप्त होती है।

सत्य के साथ सत्य रहता है। सत्य है क्या?

सत्य वस्तु है आत्मा, मिथ्या जगत पसार।
नित्यानित्य विवेकिया लीजे बात विचार।।

आत्मा ही सत्य है, सनातन है; जगत मिथ्या है।

रूढ़ि तो सबने पकड़ रखी है। अर्जुन ने भी पकड़ रखी थी, बोला– गोविन्द! मैं युद्ध नहीं करुँगा, इससे तो सनातन धर्म नष्ट हो जायेगा। भगवान श्रीकृष्ण बोले– अर्जुन! क्या है सनातन धर्म? तो उसने बताया कि– **'जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः'** (गीता, 1/43)– कुलधर्म सनातन है, वह नष्ट हो जायेगा; जातिधर्म शाश्वत है, वह नष्ट हो जायेगा; पिण्डोदक क्रिया सनातन है, वह नष्ट हो जायेगी। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।। (गीता, 2/2)

अर्जुन! तुझे इस विषम-स्थल में घोर अज्ञान कहाँ से प्राप्त हो गया? जिस स्तर का मैं युद्ध बताता हूँ उसकी समता का कुछ है ही नहीं! तुमको ये

घोर अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया? न कीर्ति बढ़ानेवाला है, न कल्याण करनेवाला है। ये अनार्यों का, दस्युओं का आचरण कहाँ से सीख लिया? अर्जुन बोला– प्रभो! इसके आगे तो मुझे कुछ भी नहीं आता, आप ही बताइए।

भगवान ने कहा– अर्जुन! आत्मा ही सत्य है। वह परम तत्त्व है, सनातन पुरुष है। आत्मा ही सत्य है, विधाता और उससे उत्पन्न सृष्टि नश्वर है। परमात्मा ही सत्य है, शाश्वत है, अजर-अमर, अपरिवर्तशील और सनातन पुरुष है, किन्तु वह परमात्मा अचिन्त्य और अगोचर है, चित्त की तरंगों से परे है। अब चित्त का निरोध कैसे हो? चित्त का निरोध करके उस सनातन परमात्मा को पाने की विधि विशेष का नाम यज्ञ है, उस यज्ञ को कार्यरूप देना कर्म है और उस कर्म को आचरण में ढालना ही धर्म है, आपका दायित्व है।

गीता में है कि– **'नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति'** (2/40)– अर्जुन! इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का नाश नहीं है। इस कर्म का किन्चित् मात्र साधन जन्म-मृत्यु के महान् भय से उद्धार करनेवाला होता है। अर्थात् इस कर्म को कार्यरूप देना ही धर्म है।

इस नियत कर्म, साधन-पथ को साधक के स्वभाव में उपलब्ध क्षमता के अनुसार चार भागों में बाँटा गया है, जिसका नाम वर्ण है। इस कर्म को समझकर मनुष्य जब से आरम्भ करता है उस आरम्भिक अवस्था में वह शूद्र है। जगतरूपी रात्रि में सभी प्राणी अचेत पड़े हैं– **'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।'** (गीता, 2/69)– संयमी पुरुष जाग जाता है। जागृति के प्रथम चरण में वह शूद्र भाग्यशाली है; असंख्य लोग सोये हैं, वह जगा हुआ है। किसी के मुँह के ऊपर कचरा पड़ा है, किसी के ऊपर से सर्प रेंगकर चला गया, नहीं जानते; जो जगा है, वह जानता है, वह भाग्यशाली है।

भगवान से माँगना है तो भगवान को ही माँग लो। भगवान रहते हैं। वह अजर-अमर हैं, अजरता-अमरता रहेगी, शाश्वत हैं तो शाश्वत पद रहेगा। वस्तु माँगोगे तो अनन्त सृष्टि है, वस्तु भी अनन्त है। वस्तु की आयु है, आयु

खत्म हुई, वस्तु तो गयी, फिर आप कंगाल के कंगाल। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन! मुझे भजकर लोग स्वर्ग की कामना करते हैं, **'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।'** (गीता, 9/21)– वो माँगते हैं, मैं देता हूँ। वो विशाल स्वर्गलोक का उपभोग करते हैं, इन्द्रपद को विभूषित करते हैं, **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'**– पुण्य क्षीण हो जाने पर मृतलोक में गिर जाते हैं। फुटपाथ पर आ गया, फिर बेचारा कंगाल का कंगाल! क्या फायदा ऐसे स्वर्ग से!! इसलिए भगवान से कुछ मत माँगो, भगवान को ही माँग लो।

महाराजा स्वयंभू मनु.... स्वर्ग उनका बसाया, सारे लोक उनके जन्माये, उनके बसाये। दुनिया में जो कुछ था, उनका था। वस्तु की तो कमी नहीं थी, लेकिन दुःख लगा कि बगैर भजन के जिन्दगी चौपट हो रही है। वे भजन में लग गये। भगवान ने दर्शन दिया, बोले– वत्स! वर माँगो! तो हाथ जोड़कर महाराजा मनु ने कहा– प्रभो! दरिद्र आदमी यदि कल्पवृक्ष पा जाये तो बहुत संपत्ति माँगने में संकोच होता है, मुझे भी संकोच हो रहा है प्रभो!

जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई।।
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदयँ मम संसय होई।।

(मानस, 1/148/5-6)

वह दरिद्र उसका प्रभाव नहीं जानता, वैसे ही भगवन्! मुझे सन्देह हो रहा है, आप दे पाओगे कि नहीं! भगवान बोले– तुम मुझे महादानी अनुमान और फिर माँग। मनु बोले– प्रभो! मुझे आप चाहिए। भगवान बोले– अरे! मेरे जैसा तो सृष्टि में कोई है ही नहीं, मैं कहाँ से लाकर दे दूँ। जाओ, मैं ही प्राप्त होऊँगा।

जब भगवान से माँगना है तो भगवान को माँगो। भगवान अजर-अमर हैं, कण-कण में व्याप्त हैं, उनके तेज के अंश मात्र से अनन्त बार सृष्टि का सृजन, पालन और परिवर्तन होता ही रहता है, तुम्हारे अन्दर से भी होता रहेगा। यदि और कुछ माँग लिया तो गरीब का गरीब।

दरिद्र बहुत संपत्ति माँगने में संकोच करता है। सुतीक्ष्ण को जब भगवान् ने दर्शन दिया तो बोले– वर माँगो! सुतीक्ष्ण बोले– प्रभो!,

मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा। समुझि न परइ झूठ का साचा।।

(मानस, 3/10/24)

भगवन्! हमें नहीं मालूम था आप मिल जाओगे तब भी माँगना बाकी रह जायेगा। हमें नहीं मालूम है क्या सच है क्या झूठ है, जो अच्छा लगे, दे दो। भगवान बोले– जाओ, मैंने अपनी अनपायनी भक्ति दिया। उस गरीब को समझ में नहीं आया, ये अनपायनी भक्ति है क्या? सुतीक्ष्ण बोला– देखो प्रभु! हृदय में बने रहना। भगवान बोले– हाँ-हाँ, हमने वही दिया है।

सुतीक्ष्ण के हृदय में भगवान थे, आँख खुली तो बाहर भी भगवान थे। जब हृदय में प्रभु आ जाते हैं तो सृष्टि में जहाँ दृष्टि पड़ती है तो वहाँ भगवान ही होते हैं, दूसरा होता ही नहीं– **'जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना।'** (मानस, 1/53/6)

भगवान राम वनवास में थे। विकल भरत को राजपाट मिला, तिनके की तरह त्यागकर भैया राम से मिलने चल दिए। पूरा जनपद पीछे लग गया। अवध के सब निवासी विकल थे, फौज-फाटा, सेना सब विकल थे। रास्ते में एक कोल-भील का खेत पड़ गया, दो-एक बीघा बाजरा बोया हुआ था। बाजरा दो-तीन फीट ऊँचा बढ़ गया था। अनायास जंगल में खेत पड़ गया, हाथी, घोड़ा, वाहन, रथ ऊपर से निकल गये।

वह कोल भागता हुआ रामजी के पास पहुँचा, बोला– अरे प्रभु! हम तो मर गये। रामजी बोले– अरे! तुम जिन्दे हो! कोल बोला– महाराज! लड़के मर गये। रामजी बोले– वो देखो, एक-दो-तीन– चार....आठ.... सब तो चले आ रहे हैं। कोल बोला– प्रभु! मरे तो नहीं है लेकिन मर जरुर जायेंगे। रामजी बोले– वह कैसे? वह बोला– आपने तो हमारा खेत देखा है! राम बोले– भई! बड़े सवेरे ब्रह्मवेला में घूमने जाता हूँ, तुम्हारा खेत पड़ता है, बहुत अच्छा खेत है तुम्हारा। कोल बोला– अब वहाँ धूल उड़ रही है। अयोध्या से भरत नाम

का राजा आया है, ऊपर से हाथी, घोड़ा, रथ घूम गये, एकदम धूल उड़ रही है। प्रभो! उसी को खाकर तो साल भर जीते रहे, जब अन्न है ही नहीं, लड़के मरे तो नहीं लेकिन मर जरुर जायेंगे।

रामजी बोले– ओह, भरत आया है, तुम चिन्ता मत करो, तुम माँगो, क्या चाहते हो? जो चाहो माँग लो। कोल बोला– प्रभु, मेरा खेत जाम जाय। रामजी बोले– अरे, ये क्या माँग लिया तुमने! और माँगो। वह बोला– बाजरा खूब बढ़ जाये। रामजी बोले– अरे, पागल हो गया है! हम कहते हैं, जो चाहो माँग लो। कोल बोला– प्रभु, खूब फले। भगवान बोले– और माँगो। तो कोल बोला– काटना न पड़े, कटाय जाय। माड़ना ना पड़े, मड़ाय जाय। पीसना न पड़े, पिसाय जाय। रोटी न बनाना पड़े, बन जाय। और खाय के ना पड़े, पेट भर जाय...। अन्ततः कोल बाजरे की ही परिक्रमा करता रह गया। भगवान ने बहुत ललकारा लेकिन बाजरे से बाहर नहीं निकला। मनुष्य की जो औकात होती है न, उसके आगे उसकी दृष्टि होती ही नहीं। ये जो महाविद्वान, महामेधावी हैं न, उनकी भी बुद्धि केवल माया तक सीमित है।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।

(मानस, 3/14/3)

इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषयों में जहाँ तक बुद्धि उड़ान भरती है, जहाँ तक मन निर्णय लेता है, **'सो सब माया जानेहु भाई।'**– वह मायिक क्षेत्र का ही छोटा-बड़ा निर्णय होता है। कदाचित् अपनी प्रखर बुद्धि से माँग ही लोगे तो वह माया होगी। इसलिए भगवान से माँगो मत, भगवान की गोद में अपने आप को फेंक दो, समर्पित कर दो कि प्रभो! आप जानें। तुरन्त वह पा जाओगे, जिसके पीछे दुःख नहीं। वह धाम पा जाओगे, **'स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्'** (गीता, 18/62)– सदा रहनेवाला धाम, सदा रहनेवाली शान्ति, सदा रहनेवाला जीवन। यही निष्काम कर्मयोग का रहस्य है। आपको गीता से यही मिलता है। गीता आपका धर्मशास्त्र है। आद्योपान्त इसकी तीन-चार आवृत्ति अवश्य करनी चाहिए।

।। ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय।।

केसव! कहि न जाइ का कहिये

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा।।

(मानस, 7/95/2)

बोलो श्रीराम जय राम जय जय राम................

ओम् जय सियाराम जय जय सियाराम............

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगन सदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि।। (गुरुगीता, 111)

!! बोलिए श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय!!

ज्ञानयोग तथा निष्काम कर्मयोग एक ऐसा अटपटा प्रश्न है जिसको न समझने का दुष्परिणाम आज सम्पूर्ण भारत भुगत रहा है। दुनिया में सभी लोग अपने-अपने विश्वास के अनुसार भजन करते हैं किन्तु भारत में 75 प्रतिशत जनता भजन नहीं कर सकती। संन्यास एक सम्प्रदाय बनकर रह गया है। संन्यासी केवल ब्राह्मण बन सकता है। वे कहते हैं– हम शुद्ध हैं, बुद्ध हैं, आत्मा हैं, 'प्रज्ञानां ब्रह्म', 'अहम् ब्रह्मास्मि', 'हमारे लिए कर्म हैं ही नहीं'। कोई गीता में संन्यास, उपासना, भक्ति और ज्ञानमार्ग बताता है तो कोई अनेकानेक मार्ग गीता के आधार पर प्रस्तुत करते हैं जबकि भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में दो निष्ठायें– ज्ञान और कर्म बताये हैं। सांख्य और ज्ञान एक हैं। इसी तरह से भक्ति, उपासना और निष्काम कर्म एक ही हैं। साधन छोड़ने का विधान किसी भी मार्ग में नहीं है इसीलिए भगवान ने हाथ पर हाथ रखकर बैठनेवालों और अपने को 'आत्मा' कहनेवालों का खण्डन **'न निरग्निर्न चाक्रियः'** (गीता, 6/1) कहकर किया।

वास्तव में भगवान एक प्रत्यक्ष दर्शन है।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श‍ृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥ (गीता, 2/29)

कोई विरला महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की तरह देखता है और वैसे ही कोई दूसरा महापुरुष ही आश्चर्य की तरह इसके तत्त्व को कहता है। जिसने देखा है वही यथार्थ कहता है। दूसरा कोई विरला साधक इसे आश्चर्य की भाँति सुनता है। सब सुनते भी नहीं क्योंकि यह अधिकारी के लिए है। बहुत से सुनकर भी नहीं जानते क्योंकि मोह बड़ा प्रबल है।

एक ही साधना को भगवान ने चार भागों में बाँटा जिसका नाम वर्ण है। पहले तो मनुष्य अचेत है, मोहरूपी रात्रि में सभी प्राणी अचेत पड़े हैं। गीतोक्त साधना समझकर जहाँ संयम थोड़ा उन्नत हुआ तब वह जग जाता है। जागृति काल में वह अल्पज्ञ साधक शूद्र है। संयम थोड़ा सधा तो वही वैश्य। संयम और प्रगाढ़ हुआ तब वह क्षत्रिय है, तब वह प्रकृति से द्वन्द्व झेलने की क्षमतावाला है। उसका अन्तिम विकार भी जब शान्त हुआ तब वह ब्राह्मण है, किन्तु वह है अधूरा। परमात्मा में साक्षात्कार के साथ साधक विलीन हो गया तब वह तत्त्वदर्शी है, तत्त्व उसमें प्रवाहमान है।

अर्जुन क्षत्रिय श्रेणी का साधक है। युद्ध से बढ़कर कोई कल्याणकारी मार्ग क्षत्रिय के लिए नहीं है। ऐसा युद्ध भाग्यवान क्षत्रिय ही पाता है। भगवान ने कहा– यदि तुम युद्ध नहीं करोगे तो स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त हो जाओगे। बैरी लोग दीर्घकाल तक तेरे अपयश का गायन करेंगे। वह अपकीर्ति माननीय पुरुष के लिए मृत्यु से भी बढ़कर है।

भगवान श्रीकृष्ण ने बताया– निवृत्ति के केवल दो मार्ग हैं– 1. ज्ञानयोग अर्थात् सांख्ययोग, 2. कर्मयोग अर्थात् भक्तियोग। तीसरा कोई मार्ग नहीं है। इसी को निष्काम कर्मयोग कहते हैं। गीता अध्याय दो में भगवान ने कहा–

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु।
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।। (गीता, 2/39)

अर्जुन! यह बुद्धि तेरे लिए ज्ञानयोग के विषय में कही गयी है। कौन-सी? यही कि युद्ध कर। जीतोगे तो सर्वस्व, और हारोगे तो देवत्व प्राप्त करोगे। दोनों हाथों में लड्डू है। हार में देवत्व, जीत में सर्वस्व। लाभ में भी लाभ और हानि में भी लाभ।

दूसरी बात, यदि तुम युद्ध नहीं करोगे तो बैरी लोग तुझे युद्ध से उपराम हुआ समझेंगे, न कहने योग्य अपशब्द कहेंगे। माननीय पुरुष के लिए अपकीर्ति मृत्यु से भी बढ़कर होती है, इसलिए युद्ध कर। लाभ-हानि, जय-पराजय को समान समझकर, तत्पश्चात् युद्ध कर। यह बुद्धि ज्ञानयोग के विषय में कही गयी है।

ज्ञानयोग का अर्थ यह नहीं कि हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाओ। तुम्हें युद्ध करना है। बस फर्क इतना है कि लाभ-हानि का निर्णय लेकर, बलाबल का निर्णय लेकर, तब युद्ध में प्रवृत्त होना साधना में सांख्ययोग, ज्ञानयोग कहलाता है। इसी को निष्काम कर्मयोग के विषय में सुन कि जिससे युक्त हुआ तू कर्मों के बन्धन का अच्छी प्रकार नाश करेगा। तो केवल बुद्धि का अन्तर है। निष्काम कर्मयोग का विशेष फल? ज्ञानमार्ग का तो दो फल– जीतने पर सर्वस्व, हारने पर देवत्व लेकिन निष्काम कर्मयोग के परिणाम में एक फल कि कर्मों के बन्धन का अच्छी प्रकार नाश करोगे।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।। (गीता, 2/40)

अर्जुन! इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का नाश नहीं, सीमित फलरूपी दोष नहीं इसलिए इस धर्म का स्वल्प अभ्यास महान् जन्म-मृत्यु के भय से उद्धार करनेवाला होता है। गीतोक्त साधना समझकर आरम्भ भर कर दो, कर्म आरम्भ कर दो, माया में कोई वज्रापात नहीं कि उसको नष्ट कर दे। सीमित फलरूपी दोष नहीं कि स्वर्ग-बैकुण्ठ में, रिद्धियों-सिद्धियों में तुम्हें भरमाकर

खड़ा कर दे इसलिए '**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्**'– इस धर्म का स्वल्प अभ्यास महान् जन्म-मृत्यु के भय से उद्धार करनेवाला होता है। गीता के अनुसार थोड़ा-सा साधन पार लग गया तो माया में कोई वज्रापात नहीं कि उसको नष्ट कर दे। उस अभ्यास के प्रभाव से अगले जनम में वह अभ्यास ही करेगा। इस जन्म में जहाँ से साधना छूटी वहीं से आरम्भ करेगा, कुछेक जन्मों के अन्तराल से वहाँ पहुँच जायेगा जिसका नाम परम गति है, परम धाम है, मेरा निज स्वरूप है। अर्जुन! इस पथ में आरम्भ का नाश नहीं, सीमित फलरूपी दोष नहीं, स्वल्प अभ्यास महान् कल्याण को करनेवाला होता है। गीतोक्त नियत कर्म का आचरण ही धर्माचरण है। सृष्टि में और कोई धर्म नहीं है।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।। (गीता, 2/41)

अर्जुन! इस निष्काम कर्मयोग में निश्चयात्मक बुद्धि एक है, क्रिया एक है। जो बहुत-सी क्रियायें बताते हैं, क्या वह भजन नहीं करते? भगवान कहते हैं– अर्जुन! अविवेकियों की बुद्धि अनन्त शाखाओंवाली होती है। गिनी न जा सके, बुद्धि इतनी भ्रमित शाखाओंवाली होती है इसलिए अनन्त क्रियाओं को गढ़ लेते हैं। 'स्वर्ग ही सर्वश्रेष्ठ है, इसके आगे कुछ नहीं है'– ऐसा कहनेवाले होते हैं, सभी कहते ही हैं, और वह जन्म-मृत्युरूपी अनन्त फल को प्राप्त होते हैं। वह दिखावटी शोभायुक्त वाणी में व्यक्त भी करते हैं। उनकी वाणी की छाप जिन-जिनके चित्त पर जाती है उनकी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है, न कि कुछ पाते हैं। खुद भी नष्ट, और जिनको उपदेश किया वह भी नष्ट। वह वेद के वाद-विवाद में उलझे रहते हैं।

तो निष्काम कर्मयोग में एक फल– प्राप्ति। ज्ञानमार्ग में दो फल– जीतने पर सर्वस्व, और हारने पर देवत्व। और जो धर्म के नाम पर अनन्त क्रियाओं को गढ़ लेते हैं, दिखावटी शोभायुक्त वाणी में व्यक्त भी करते हैं, शीर्षक में परमधाम परमात्मा शाश्वत सनातन ही रहता है, उनकी आड़ में कहते हैं, और

उनकी वाणी की छाप जिन-जिनके चित्त पर पड़ जाती है वह भी नष्ट हो जाते हैं, जन्म-मृत्युरूपी अनन्त फल को प्राप्त होते हैं, भटकते ही रहते हैं। अर्थात् ईश्वर-पथ में दो ही मार्ग हैं। गीतोक्त नियत कर्म समझकर प्रवृत्त होना ज्ञानमार्ग है। लाभ-हानि का निर्णय लेकर चलना, बलाबल का निर्णय लेकर कि 'यह करेंगे तो यह पायेंगे' इस भाव से चलता है, जानकारी रखता है इसलिए ज्ञानमार्गी कहलाता है, सांख्ययोगी कहलाता है; और भगवान की गोद में अपने को फेंककर केवल कर्म में प्रवृत्त रहता है वह निष्काम कर्मयोगी है। अर्जुन! ऐसे भक्तों के योगक्षेम का भार मैं स्वयं वहन करता हूँ। योग पढ़ाना, अनन्त प्रकृति के खोह-खन्द से निर्विघ्न उस पार कर देना, यह सारी जिम्मेदारी मैं वहन करता हूँ। इसी स्तर का एक भजन विनयपत्रिका का है जिसमें गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं– **'केसव! कहि न जाइ का कहिये'**– हे केशव! इसे देखकर भी वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता। यथा–

केसव! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिये।।1।।

सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटइ न मरई भीति दुख पाइय एहि तनु हेरे।।2।।

रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं।।3।।

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै।।4।।

- - - - - - - -

केसव! कहि न जाइ का कहिये।

भगवन्! कहते ही नहीं बनता क्या कहें। वाणी में क्षमता नहीं कि आपकी इस रचना का वर्णन कर दे। दिखाई अवश्य पड़ता है, भला है क्या?

देखत तव रचना बिचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिये।।1।।

प्रभो! आपकी रचना बड़ी विलक्षण है, **'समुझि मनहिं मन रहिये'**– मन ही मन समझकर रह जाना होता है। वाक्यबद्ध किया ही नहीं जा सकता। कहने पर भी कोई विश्वास करेगा क्या? गोस्वामीजी को जब भगवान की विभूतियाँ दिखाई पड़ी, जैसे काकभुशुण्डि को दिखाई पड़ा–

उदर माझ सुनु अंडज राया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया।।

(मानस, 7/79/3)

अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला।।

(मानस, 7/79/6)

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता।।

(मानस, 7/80/1)

काकभुशुण्डि ने यह सब देखा। कई कल्प तक उस उदर में घूमते रहे और उदर में अपनी कुटिया भी देखी, वहाँ सत्ताईस वर्ष रहकर भी बिताया, अन्त में कहते हैं–

उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेषा।।

(मानस, 7/81/8)

दो घड़ी में देखा! यह केवल अनुभव है। भगवान आपमें दृष्टि बनकर खड़े हो जाते हैं, सामने स्वयं – इसका नाम अनुभव है। तुलसीदासजी ने यही अनुभव देखा। समझ में तो आ रहा है लेकिन व्यक्त करते नहीं बनता।

देखत तव रचना बिचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिये।।1।।

एक रईस कबीर को चिढ़ाया करे। बचपन से साथी ही तो थे लेकिन कबीर फक्कड़ हो गये, वह हो गया बड़ा रईस, करोड़पति। वह बोला– क्या खप्पर लेकर भीख माँगते हो। कबीर वास्तव में महात्मा थे। कबीरदासजी ने कहा– तुम क्या लेकर घूमते हो? वह बोला– मित्र! यह हाथी, घोड़ा, यह ठाठ...!

एक दिन कबीर साहब को बड़ा दुःख हुआ, मित्र का शरीर छूट गया। कबीर साहब पहुँच गये–

अब कहाँ चलेऊ अकेले मीता।
उठहुँ न करहुँ घरहुँ कर चिन्ता॥

हे मित्र! अब अकेले कहाँ चल दिए? उठो, जागो, घर की चिन्ता करके देखो।

खीर खाँड़ घृत पिण्ड सँवारा, सो तन लै बाहर करि डारा॥

खीर-खाँड़, घी-दूध खा-पीकर इस शरीर को सँवारा है, आज वही तन बाहर पड़ा हुआ है। कभी-कभी शाम को सोये, सुबह उठे ही नहीं, लोग बोले– हार्ट-अटैक हो गया। और शरीर ज्यों का त्यों।

जेहिं सिर रचि-रचि बाँधेउ पागा, सो तन रतन बिडारत कागा॥

हर स्टेट की अलग-अलग पगड़ी है, राजस्थान में रच-रच कर पागा पहनते हैं, आज वही रतन जड़ित शरीर को कौआ विदार रहा है।

हाड़ जरै जस लकड़ी की गोली, बाल जले जस घास की पूली॥

हाड़ सूखी लकड़ी जैसे जले। जहाँ लड़कों ने आग लगाया तो एक ही लपट में सुर्र..., बाल घास की पूली जैसे सिमट गये।

आवत संग न जात संगाती, कहा भये दल बाँधल हाथी॥

आते समय संग में कोई नहीं आया, जाते समय संग-संगाती कोई नहीं जा रहा है। न आते कोई संग आया, न जाते समय कोई साथ दिखाई पड़ रहा है। अकेले ही चल रहे हो तब दल का दल हाथी-घोड़े बाँधकर कौन बहादुरी कर दिया!

माया का रस लेन न पाया, अंतर यम बिलार होइ धाया॥

माया का रस अभी कायदे से ले ही नहीं पाये थे, अभी तो रस लेने की अवस्था आई है, बड़ी मुश्किल से तो घर में मार्बल लगा है, रहने लायक हुआ है, अब ठाठ से रहेंगे, इतने में अन्दर ही अन्दर यम बिलार होकर दौड़ा और पकड़ लिया। इतना स्पष्ट उदाहरण मिलने पर भी जो जीवित हैं, वह अपने को अमर मान रहे हैं।

कहैं कबीर नर अजहुँ न जागा, यम का मुद्गर मांझ सिर लागा।।

यम का मुगदर बीच सिर में लग गया है। अब चितायें उठ रही हैं फिर भी मनुष्य नहीं जागा। जो जीवित हैं, वह अपने को अमर मानते हैं।

युधिष्ठिर से यक्ष ने पूछा– दुनिया में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? युधिष्ठिर बोले– एक के बाद एक लोग काल के गाल में सिमटते जाते हैं। काल समय की कलछुली से उलट-पलटकर उस क्षण पर पहुँचा देता है जो इस शरीर का अन्तिम क्षण है, और परिपक्व करके उठाकर खा लेता है किन्तु जो जीवित हैं वह अपने को अमर मानते हैं, उससे छूटने के लिए अभ्यास नहीं करते, हरि की शरण नहीं लेते। हरि की शरण लेने में कुछ त्यागना नहीं पड़ता, केवल जो मन उधर जड़ा है, उधर से उठाकर इधर जोड़ना पड़ता है, केवल श्रद्धा से पकड़ना पड़ता है।

भजन घर में रहते हुए ही होता है। भजन के लिए गीता का आदेश है– दुर्लभ मानव तन को पाकर मेरा भजन कर। रामचरितमानस में आदेश है– **'बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।'** (मानस, 7/42/7)**-** 'देव दुर्लभ है'–ऐसा सदग्रन्थों ने गाया है। ऐसे दुर्लभ तन को पाकर जिसने निजी परलोक नहीं सँवारा,

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ।। (मानस, 7/43)

वह जन्म-जन्मान्तरों में दुःख पाता है, सिर धुनकर पछताता है, काल-कर्म-ईश्वर को व्यर्थ दोष देता है। मनुष्य शरीर उपलब्ध है तो न काल का, न कर्म का और न ईश्वर का, सब दोष उसी का है।

मुसीबत में आने पर आदमी दो-तीन बहाना किया करता है– भाई, (1) 'समय अनुकूल नहीं है'–काल को दोष देना। (2) 'भाग्य में लिखा नहीं है'–कर्म को दोष देना। (3) 'करते-धरते भगवान हैं, वह कराते ही नहीं'–ईश्वर को दोष देना। किन्तु भगवान राम स्वयं कहते हैं– **'कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ।'**– वह व्यर्थ दोष, अनर्गल झूठा दोष लगाता है। यदि

मनुष्य शरीर उपलब्ध है, अपना ही निजी परलोक नहीं सँवारा तो सब दोष उसी का है; न काल का, न कर्म का, न ईश्वर का दोष है। इसलिए केवल श्रद्धा से लगो। भला है क्या? प्रकृति का चित्रण करते हुए कहते हैं–

सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटइ न मरई भीति दुख पाइय एहि तनु हेरे॥

'सून्य भीत पर'– भीत है ही नहीं, शून्य है। शून्य भीत पर चित्र लिखे हुए हैं, बगैर रंग के लिखे हुए हैं और बगैर तन के चितेरे ने लिख दिया है– **'तनु बिनु लिखा चितेरे'**। काल ने यह लकीरें खींच डाली। न धोने से यह भीत मिटती है, न यह भीत कभी मरती है। और **'दुख पाइय एहि तनु हेरे'**– शरीर में ममत्व की वजह से यह भीत दुःख देती है।

भोलेनाथ शिव कहते हैं–

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥

(मानस, 3/38/5)

जगत एक सपना है। एक स्थान पर गोस्वामीजी निर्णय देते हैं कि-

जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे।
धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे ॥4॥

जगत एक आकाशीय वाटिका है। वह धुँए का गुबार है। क्वार मास में जब बादल ठहर जाते हैं तो बच्चे खड़े होकर उसमें अनुमान लगाते रहते हैं, वह वृक्ष है, वह पीपल जैसा है, शेर का मुँह, हाथी का मुँह.... तमाम फुलवारी खड़ी कर लेते हैं लेकिन थोड़ी देर में बदलकर दूसरे प्रकार के बन जाते हैं, थोड़ी देर में बादल विलुप्त हो जाते हैं। तो जगत एक आकाशीय वाटिका है, **'जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे।'**– किस्म-किस्म के आकार धारण करती रहती है, लेकिन है क्या?

धुवाँ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे ॥4॥

धुएँ का गुबार है, और कुछ भी नहीं। उसे देखकर भूलो मत। उन्हीं

तुलसीदासजी की यह कविता है।

सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।

माया की भीत अत्यन्त शून्य है, **'शून्य भीत पर'** आकाश में चित्र हैं, बगैर रंग के चित्र हैं, और बगैर तन के चितेरे ने लिखा है। भगवान का तन नहीं है। जब पार्वती ने भोलेनाथ से पूछा– भगवन्! राम कौन?

रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई।।

(मानस, 1/107/8)

पहले तो भोलेनाथ बिगड़ खड़े हुए, बोले– अरे इतना अनर्गल प्रश्न किया क्यों?

कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच।। (मानस, 1/114)

जैसा तुमने अनर्गल प्रश्न किया, ऐसा प्रश्न पाखण्डी लोग किया करते हैं। हरि-पद से विमुख हैं, जिन्हें झूठ-सच का विवेक नहीं, वह लोग करते हैं, तुमने यह अनर्गल प्रश्न कैसे कर दिया? शंकरजी बहुत बिगड़े–

बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे।।
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना।।

(मानस, 1/114/7-8)

लेकिन माता पार्वती के चेहरे पर कोई शिकन नहीं आई तो शंकरजी ने सोचा– मेरी डाँट-फटकार का इसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं, आखिर यह प्रश्न इसका है भी कि नहीं? तो शंकरजी ध्यानस्थ हो गये, और दो घड़ी तक ध्यान में रहकर देख लिया कि पार्वती के मन में क्या है। शंकरजी बहुत खुश हुए।

राम कृपा तें पारबति सपनेहुँ तव मन माहिं।
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं।। (मानस, 1/112)

रामजी की कृपा से हे पार्वती! तुम्हारे मन में न तो शोक है न मोह है, न सन्देह है, न भ्रम है, कुछ भी नहीं है। यह प्रश्न तुम्हारा नहीं है लेकिन

जगत का प्रश्न अवश्य है। तुमने जो प्रश्न किया है लोकहित के लिए किया है, तो सुनो कि राम कौन?

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा।।

(मानस, 1/117/4)

जन्मा कब से, जियेगा कब तक यह तो कोई नहीं पाया। अपने विवेक के अनुसार वेदों ने इस प्रकार गायन किया है राम कैसे हैं?

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।

(मानस, 1/117/5)

बगैर पैरों के चलता है, बगैर कानों के सुनता है, बगैर हाथों के हर प्रकार का कार्य करते हैं।

आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।

(मानस, 1/117/6)

बगैर मुख के सारे रसों का भोक्ता है, बगैर वाणी के बहुत बड़ा प्रवक्ता है, योगी है।

तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।

(मानस, 1/117/7)

शरीर है ही नहीं, स्पर्श करता है। बगैर नासिका के हर प्रकार की खुशबू ग्रहण करता है।

असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।

(मानस, 1/117/8)

इस प्रकार हर तरीके से अलौकिक करनी है। यह है राम का स्वरूप। बुलाओ फोटोग्राफर, खींचो फोटो! बगैर पैरों के कोई चल रहा है, बगैर हाथों के कोई काम कर रहा है। है कोई मशीन चित्र खींचने की? लेकिन यही सत्य है।

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान।। (मानस, 1/118)

'बेद बुध'– प्रबुद्ध, प्रत्यक्षदर्शी महापुरुष जिसका इस प्रकार गायन करते हैं, जिसका मुनि लोग ध्यान धरते हैं, वह हैं राम.... दशरथ का सुत, भक्त का हितैषी।

सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।

माया एक शून्य भीत है। उसमें अनन्त चित्र हैं। किसी रंग के नहीं, वैसे ही फर्जी दिखाई भर पड़ते हैं। **'तनु बिनु लिखा चितेरे'**– भगवान बिना तन का चितेरा है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– अर्जुन! मेरे तेज के अंश मात्र से सृष्टि का सृजन, पालन और परिवर्तन होता ही रहता है।

हनुमानजी ने जब भगवान रामजी की परीक्षा लेनी चाही, शुद्ध संस्कृत में अंधाधुन्ध बोलने लगे। भगवान राम लगे मन बहलाने। थोड़ी देर में पोल खुला तो पता चला, जिसकी प्रतीक्षा में मैं यहा पड़ा हूँ वह प्रभु आ गये, तो हनुमान चरणों में गिर गये।

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ।।

(मानस, अरण्यकाण्ड, चौ.10)

तीन देव ब्रह्मा-विष्णु-महेश में से आप हैं अथवा नर और नारायण हैं? आपकी आभा अलौकिक है, आप मनुष्य हो ही नहीं सकते। बोलिए, आप कौन हैं? और फिर कहा-

जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार।। (मानस, 4/1)

या जगत की उत्पत्ति के कारण, भव से उद्धार करनेवाले, पृथ्वी का भार हरनेवाले साक्षात् पारब्रह्म परमात्मा हैं? आप कौन हैं? तीन देव कोई और, जग-कारण भव-तारण कोई और। यह तीन देव क्या?, और इनका स्थान क्या? **'जग कारन तारन भव'**– जगत की उत्पत्ति का कारण भगवान हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी का कथन है– माया शून्य भीत है, चित्र अनन्त हैं और बगैर रंग के चित्र और बगैर तन के चितेरे ने लिख दिया, चित्रित कर दिया, वह हैं भगवान।

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥

(मानस, 1/143/6)

जगत की उत्पत्ति का कारण– भगवान। **'तनु बिनु लिखा चितेरे'**– तो यह भीत कुछ भी नहीं है लेकिन मिटती भी नहीं।

धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे॥2॥

माया भी अनादि है, मरती कभी नहीं, धोये मिटती नहीं। और दुःख उन्हें मिलता है जिनका तन में अत्यधिक ममत्व है- **'दुख पाइय एहि तनु हेरे',** इसलिए जहाँ देहाध्यास से ऊपर उठ गये तो इसके संयोग-वियोग से मिलनेवाला दुःख, संयोग-वियोग से मिलनेवाला सुख, दोनों समाप्त।

सुख दुख से एक परे परम सुख, ता सुख रहा समाई॥
संतो सहज समाधि भली॥

दुःख तब मिलता है जब तक तन और तन के प्रसार में, व्यवहार में हमारी आसक्ति है– **'दुख पाइय एहि तनु हेरे'**। और यह संसार कैसा है? संसार मृगतृष्णा का जल है।

धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे॥2॥

'धोये मिटइ न मरइ भीति'– न धोने से मिटती है, न भीत कभी मरती है। और– **'दुख पाइय एहि तनु हेरे'**– इस शरीर में ममत्व की वजह से दुःख झेलना पड़ रहा है, और कोई कारण नहीं। और इस संसाररूपी बगीचे में-

रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं॥3॥

मृग-तृष्णा का जल इसमें भरा हुआ है। रेगिस्तान में नजरपसार बालू ही बालू, पेड़ देखने को नहीं मिलते। छोटे-मोटी कँटीलीं झाड़ियाँ भर हैं। रेगिस्तान में जब दोपहर में सूर्य की सीधी किरणें पड़ती हैं, ज्येष्ठ मास में रेत इतनी गर्म हो जाती है कि उसमें से ताप की लहरें उठने लगती हैं। सारे

छोटे-बड़े जीव छोटी-छोटी झड़कुलिया में छिपे रहते हैं। मृगा भी, चूहा भी, खरगोश भी वहीं छिपा रहता है, भेड़िया भी छिपा है। प्यास में सभी छटपटा रहे हैं, पानी है ही नहीं। लेकिन जब वह लहर चलने लगती है तो ऐसा लगता है जैसे नदी बह रही है तो बड़ी आँखोंवाला मृगा झाड़ी में से निकलकर दौड़ पड़ता है कि पानी पीकर आऊँ। पानी है ही नहीं। दौड़कर गया तो और भी झुलस गया, वहाँ तो आग लगी हुई है। तब घबराकर दूसरी ओर देखा, उधर भी लहर दिखाई पड़ी। भागा पीने। फिर तीसरी ओर.... और झुलस गया। फिर इधर भागा, उधर भागा, उलटकर मर गया। यह मृग-तृष्णा का जल है। माताओं की उपमा मृगे से दी है कि मृगलोचनी, मृगनयनी.....। छोटी आँखवाला चूहा जानता है कि वहाँ आग बरस रही है और यह बड़ी आँखवाला मृगा नहीं देख पाता। वह सोचता है पानी है, और उलटकर मर ही जाता है। माता सीता को भी कवियों ने मृगलोचनी की संज्ञा दी है। यह मृगे जैसी आँखोंवाली सीता नहीं समझ पाई कि यह यती चले आ रहे हैं कि राक्षस, और चली गयी लंका। तो **'रबिकर-नीर बसै अति दारुन'**– मृग-तृष्णा का जल संसार में बसता है। और हम पानी पीने जाते हैं, वहाँ मौत मिलती है। **'मकर रूप तेहि माहीं'**– कालरूपी मगर उसमें निवास करता है। काल का कोई आकार नहीं, शरीर नहीं।

हमने गुरु महाराज से पूछा– भगवन्! काल क्या होता है?, कैसा होता है?, कहाँ रहता है? गुरु महाराज बोले– पूछ अपने भगवान से, बतायेंगे तुमको। हम बोले– गुरु महाराज, आप ही तो हैं भगवान। और तो भगवान हमने देखा नहीं। गुरु महाराज बोले– प्रार्थना कर।

अनुभव में दिखाई पड़ा कि एक बहुत बड़ा कड़ाहा है। आदमी खड़ा डूब जाये उतना ऊँचा। भीतर हम खड़े थे और गर्दन बाहर निकालकर देख रहे थे। इतने में ऊपर से उतना ही बड़ा एक कड़ाहा आया और हम बचने के लिए हाथ आगे-पीछे करते उतने में तो खचाक गर्दन उधर और हाथ इधर और धड़ भीतर। आदमी सुरक्षित खड़ा है, काल आया तो एक पल लगा।

फिर हमने देखा कि हम चल रहे हैं। फिर एक दृश्य और आया कि हमें कोई पकड़े हुए है, सर्वत्र सब जगह पर पकड़े हुए है। जैसे हाथ-पाँव हिलते हैं वैसे वह भी हिल रहा है, लेकिन निश्चित दूरी पर एकदम फिक्स है, जैसे चमड़ी फिक्स है। फिर वह शिकंजा टाईट हो रहा है। बड़ा बारीक शिकंजा है, टाईट हो रहा है, टाईट हो रहा है जहाँ इन रोंवों के ऊपरी भाग को छुआ तो इतना कष्ट हुआ कि प्राण तो गया। हम बोले– काल तो साथ-साथ घूमता है। वह काल का शिकंजा.... काल माने समय, समय की गति करीब आ रही है, करीब आ रही है, करीब आ रही है, और अस्सी साल पूरे हुए, 81 साल एक महीना आयु है तो एक महीना भी आ गया और सट से रोंवा छुआ कि मौत। उसको कहीं से आना नहीं पड़ता है।

काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा॥

(मानस, 6/36/7)

संसार को लोग कहते हैं– 'जगत मिथ्या है, जगत मिथ्या है', यह व्यर्थ की बात रट लगाये पड़े हैं। मिथ्या ही है तो इससे छूटने के उपाय पर विचार करना चाहिए। मान लिया मिथ्या ही है तो हम करें क्या, हमें तो कुछ भी मिथ्या दिखाई नहीं देता? भगवान के भजन से जो मिलता है वह है– लोक में समृद्धि और परमश्रेय की प्राप्ति।

बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं॥3॥

वह बे-बदन का है और देव-दानव-मानव, जड़-चेतन जो फँस गया, चराचर को ग्रस लेता है, लेकिन– **'पान करन जे जाहीं'**– जो पीने जायेगा उसी को। और जो झाड़ियों में छिपकर बैठे हैं, उनको नहीं मार पाता। इसलिए संसार एक मृगतृष्णा का जल है।

इस संसार के प्रति लोगों के तीन मत हैं–

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।

कोई कहता है संसार झूठ है, कोई कहता है सत्य है, कोई-कोई कहता है सत्य और झूठ से मिला हुआ है– **'जुगल प्रबल कोउ मानै'**। लेकिन

तुलसीदासजी का निर्णय है–

तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै॥4॥

तीनों भ्रम हैं। जो तीनों भ्रम को त्याग देगा, **'सो आपन पहिचानै'**– वह अपने आपको पहचान लेगा, वह अपने स्व-स्वरूप को पहचान लेगा। इधर चित्त लगाना ही एक भ्रम है।

केसव! कहि न जाइ का कहिये।

मार्कण्डेय ऋषि ने भगवान से कहा– प्रभो! हमें माया दिखा दो। प्रभु बोले– तुम इसी आसन पर बैठकर एक वर्ष प्रतीक्षा करो, माया तुम्हें दिखाई जायेगी, तल्लीन होकर भजन करो।

एक वर्ष जहाँ बीता तो मार्कण्डेय ऋषि को दिखाई पड़ा कि सामने से समुद्र चला आ रहा है तो घबराकर पीछे घूमे कि इधर भागूँ नहीं तो लहरें ढाँप लेंगी। तो पीछे से भी समुद्र चला आ रहा है, दाहिने-बाँये से भी समुद्र चला आ रहा है। सोचे, अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ। इतने में लहरों ने ढाँप दिया तो उसी में मर गये और फिर जी गये। तब फिर मगर ने छलांग मारा, उधर से किसी ने मारा उसकी चपेट में आकर फिर मर गये, फिर जी गये। चार बार मरे और जिये। फिर मौत, फिर जन्म...। जब अत्यन्त घबरा गये तो उन्हें एक वृक्ष दिखाई पड़ा, बरगद का पत्ता दिखाई पड़ा। वृक्ष के टहनी के पत्ते पर भगवान बालमुकुन्द लेटे हुए थे। जहाँ उनको छुआ तो तुरन्त दृश्य खत्म हो गया। आँख खुली तो स्वयं को अपने आसन पर पाया। यही है माया। **'पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम्, पुनरपि जननी जठरे शयनम्'** (मोह-मुद्‌गर, 21)– बार-बार जन्म-मृत्यु, बार-बार गर्भवास में शयन करना, फिर जन्म लेना, फिर शयन करना–यही है माया।

एक मंदिर के पुजारीजी बड़े ठाला में थे। भगवान से प्रार्थना किया करें कि प्रभो! हम षोडश प्रकार से आपकी पूजा किया करते हैं, लड़के भूखे मर रहे हैं। आजकल ग्राहक (भगत) बड़े कंजूस हो गये हैं, दान-पुण्य तो रह ही नहीं गया दुनिया में।

इतने में एक महात्मा आये, टाट लपेटे, एकदम फक्कड़, बोले– पुजारी जी! सीताराम। कुछ खाने-पीने को दोगे? पुजारीजी ने देखा एड़ी से चोटी तक उस फटीचर को टाट लपेटे, बोले– पता नहीं कहाँ से भीखमंगे सुबह-सुबह मंदिर में चले आते हैं। भागो यहाँ से, गँवार कहीं का। गाली भी दिए।

महात्मा बोले– अच्छा पुजारी जी, थोड़ा-बहुत तो दे ही दिए हो, इतना काफी है, हमारा काम चल जायेगा। और वहीं परिसर के अन्दर ही जमीन पर लेट गये। महात्माओं के पास बिस्तर वगैरह नहीं होते। हमारे गुरु महाराज के पास भी नहीं था।

धरती तो आसन किया, तम्बू आसमाना।
चोला पहने खाक का, रहे पाक समाना।।

वो वहीं लेट गये। उन महात्मा का नियम था– रातभर जागकर भजन करना। बड़े सुबह सूर्य की पहली किरण के साथ लेट जाना, और जहाँ आँख खुली दस-ग्यारह बजे, तो गंगाजी के किनारे, जलाशय के किनारे तो घूमते ही हैं, नित्यक्रियाओं से निवृत्त हुए, हाथ-मुँह धोया और फिर भजन में बैठ गये।

वह महात्मा सो गये। बारह बजे आँख खुली तो उठते ही दो गाली, दो खरी-खोटी सुनाया दशरथ के, और दो रामजी को कि ई दशरथ का पूत, कुच्छौ सहुर नहीं है। अरे, जंगल गया तो मेहरिया लेके काहे गया रहा। और ले गया ही रहा तो साथे रक्खे के चाहत रहा, ओके झोपड़ी में छोड़के शिकार खेलत है। हद है नालायक। फिर दो धक्का कौशल्या को, दो धक्का सीताजी को। तुरन्त भीड़ लग गयी। कोई मालपुआ ले आया, कोई कुछ। तुरन्त छान-फूँककर अपना आराम करें।

दस-पन्द्रह दिन बीत गये। पुजारी भयंकर ठाला में रहे, भगवान से बहुत रोए कि प्रभो! मैं षोडशो प्रकार आपकी पूजा कर रहा हूँ फिर भी मूस कलैया मारत हैं (चूहे दौड़ रहे हैं), लड़के आधा पेट खाकर सो रहे हैं। और ये अघोरी सुबह सोकर उठते ही आपकी तीन पीढ़ि तक को गाली दिए पड़ा है, उसके यहाँ मालपुआ भरा है। आपके घर में भी प्रभो! अंधेरा है क्या?

भगवान ने एक ब्राह्मण का स्वरूप बनाया और पहुँच गये। पुजारी से बोले– सीताराम! पुजारीजी ने देखा उधर तो भगवान बोले– कहो पुजारीजी, सौ ऊँट एक बाड़े में बंद थे, सूई की नोंक के बराबर उसमें एक छेद था, और सब ओर से सुरक्षित था, उस छेद में से सौ ऊँट निकल गये, इधर तो नहीं आये? तब पुजारी बड़ी जोर से बिगड़ा– एक अघोरी वहाँ पड़ा है जो भगवान को गरियाये पड़ा है, और एक ये फटीचर चला आया। करे! सूई के नोंक जितने छेद से ऊँट कैसे निकल जायेगा? ब्राह्मण है कि चाण्डाल है, कौन है तू? तब पण्डित बोले– अच्छा पुजारी जी! नहीं हो सकता? तो पुजारी बोले– करे, सूई की नोंक जितने छेद से कैसे निकलेगा?

अब पण्डितजी सीधे चले गये महापुरुष के पास, बोले– कहो महाराज, पुजारीजी कहते हैं 'ये असम्भव है', आपका क्या विचार है? तब महात्मा हँसे और सादर प्रणाम किया। महात्मा ही थे, पहचान गये, बोले– भइया! दशरथ के पूत का मन हो जाय तो सूई के नोंक से ऊँट नहीं, पूरी सृष्टि अनन्त बार इस पार, उस पार हो सकती है, उन परम प्रभु का मन भर हो जाय।

तब भगवान जो ब्राह्मण बनकर खड़े थे, बोले– देखा पुजारी जी! इतना बड़ा विश्वास है भगवान के ऊपर, तब ये रसमलाई खा रहे हैं। तुम्हें तो विश्वास ही नहीं है, केवल फर्जी घण्टी हिला रहे हो। घण्टी भी जनता को दिखा-दिखाकर हिला रहे हो कि आओ, हम पुजारी को देख लो, धर्मात्मा को देख लो। तब पुजारी ने सोचा– मेरे हृदय में जो बात है, ये कैसे जानते हैं! तो भगवान को दण्डवत् करके जहाँ पीछे पण्डितजी की ओर देखा कि चरणों में गिरूँ, प्रणाम करूँ तो पण्डितजी गायब थे। तब पुजारीजी उन टाट छाप अघोरी के चरणों में गिरे। पुजारीजी हो गये चेला, वे हो गये गुरु। और सबका काम दुरूस्त। तो भगवान हृदय के भाव देखते हैं, बाहरवाले अभिनय को नहीं देखते।

निर्मल मन जन सो मोहि भावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

(मानस, 5/43/5)

।। ॐ श्री सद्‌गुरुदेव भगवान की जय ।।

रघुपति-भगति करत कठिनाई

ओम् जय गुरुदेवं जय गुरुदेव।

ओम् जय सियाराम जय जय सियाराम........

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा।।

(मानस, 7/95/2)

बोलो श्रीराम जय राम जय जय राम................

ओम् जय सियाराम जय जय सियाराम............

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी।।
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पण्डित बिग्यानी।।
तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी।।
सरन गएँ मो से अघ रासी। होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी।।

(मानस, 7/123/5-8)

साधक, सिद्ध, विमुक्त, उदासी, कबि, कोबिद, कृतग्य, संन्यासी, जोगी, सूर, सुतापस, ज्ञानी, धर्म निरत, पण्डित, विज्ञानी.... मेरे स्वामी श्रीराम का भजन किये बिना कोई भवपार नहीं हो सकता। ऐसे राम को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद।।
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा।।

(मानस, 7/121/12-13)

शिव, ब्रह्मा, विष्णु, शुकदेव, सनकादिक ऋषि और नारद, जो मुनि ब्रह्मविचार में विशारद थे सबका मत, सिद्धान्त एक कि– **'करिअ राम पद पंकज नेहा'**– राम के चरण-कमलों में प्रीति, भजन एक परमात्मा का।

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल।। (मानस, 7/122क)

पानी मथने से घी निकल आये, बालू पेरने से तेल निकल आये, यह असंभव है, कदाचित् संभव हो जाय लेकिन बिना हरि के भजन भवसागर पार नहीं किया जा सकता।

यह संसार **'दुःखालयमशाश्वतम्'** (गीता, 8/15)– दुःख का घर है, अशाश्वत है। सत्य केवल परमात्मा है। लोग बाहर सुख की तलाश में रात-दिन दौड़ते रहते हैं, **'राम बिमुख सुख सपनेहुँ नाहीं।'–** भगवान राम से विमुख सुख कहीं है ही नहीं।

महाराजा जनक ने अपनी पुत्री सीता को इतना धन दहेज दिया कि आजीवन सुख से जीवन निर्वाह करे।

दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह बिदेहँ बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि।। (मानस, 1/333)

लेकिन माता सीता को जीवनपर्यन्त दुःख ही मिला यथा– विवाह के पश्चात् जैसे ही अयोध्या आयी, मन्थरा गले पड़ गयी, वनवास हुआ। वनवास का प्रथम दिन था–

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी।।
तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई।।
(मानस, 2/123/3-4)

जंगल में न भोजन, न पीने को पानी, न ही सोने के लिए बिछौने। भगवान राम ने सीताजी को थकी हुई देखकर पेड़ के नीचे विश्राम किया, झरने का ठण्डा पानी पिया, रात्रि निवास कर, प्रातः स्नान करके आगे बढ़ गये। **'दाइज अमित'**– जनक ने इतना दहेज दिया लेकिन सीताजी के पाँव में पहनने के लिए चप्पल तक नहीं।

वनवास-काल में ऋषियों के आश्रम में जाकर, दर्शन करते दस वर्ष व्यतीत हो गया। आगे एक घटना घट गई, सीताजी का अपहरण हो गया

और राम-रावण का घमासान युद्ध हुआ, रावण मारा गया, विजय प्राप्त हुई। सीता वनवास से लौटकर आयीं, आकर सिंहासन पर बैठी ही थीं कि एक धोबी गले पड़ गया। पंचायतराज तो नहीं था लेकिन पंचायत जितनी स्वतंत्रता रामजी के राज्य में अवश्य रही। अपने मुकदमे को हवा देने के लिए अपनी धोबनिया को भगा दिया– जा ले ले न्याय भगवान राम से, करवा ले न्याय आपन। वह धोबिन जाकर सीताजी से, रामजी से रोई– हमको पति ने निकाल दिया। राम बोले– किसलिए? वह बोली कि रास्ते में नदी में बाढ़ आ गई, नाव थी ही नहीं, विवश होकर हमें एक नाविक की झोपड़ी में रहना पड़ा। रात कहीं बिताना ही था नहीं तो नदी में डूबकर मर जाती जब नदी बढ़ गई। यात्री कहीं जाता है तो निवास करता ही है। उसने मुझे घर से निकाल दिया, यह लांछन लगा रहा है कि रात भर कहाँ रही? कहता है– मैं राम नहीं हूँ जो रख लूँ। बस! रामजी ने उदासी का मुँह बना लिया, तुरन्त लक्ष्मण को बुलाकर रथ में बैठाकर पुनः सीता को वनवास।

एक महापुरुष वाल्मीकिजी की कुटिया में होनहार लड़के लव और कुश जन्मे। उन्होंने रामजी के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा पकड़ लिया। लंका विजयवाहिनी सेना संग आई थी, परास्त हो गयी। और हनुमान को भी घायल करनेवाला भरत... वो भी धराशायी। हनुमानजी ने देखा, चेहरा तो राम-सीता से मिलता-जुलता है, आखिर यह है कौन? तब ध्यान धरकर देखा– प्रभो! हमें यह बताएं, किसके बालक हैं? उन्हें ध्यान में दिखाई पड़ा कि सीता और राम की गोद में दोनों खेल रहे हैं। हनुमानजी खुश हो गए। अंगद, विभीषण, सुग्रीव सब मूर्च्छित। महापराक्रमी लक्ष्मण भी मूर्च्छित। बच्चे बोले– आप कौन? हनुमान बोले– हनुमान। बच्चे बोले– ओह! गुरुजी कथा सुनाते हैं, आपकी कथा हमें बहुत ललित लगती हैं, किन्तु हनुमानजी! यह मेघनाथ, कुंभकरण, रावण का युद्ध नहीं है। लव-कुश से मुकाबला है, उठाइए गदा! तो हनुमानजी मुँह ताकने लगे, तब लव ने कहा– भैया! इसको बाँध दो, यह बंदर खुराफाती है। तो लताओं से बाँध दिया। कहीं लताओं से हनुमान बँधता

है! बच्चे बोले– चुपचाप बैठो। कंदमूल, फल, मूंगफली लाकर रख दिया, बोले– भोग लगाओ।

इतने में रामजी पहुँचे, बोले– हनुमान! तुम कैसे दुबके बैठे हो? हनुमान बोले– प्रभो! मैं आपका साथ नहीं दे सकता, मैं इनका बंदी हूँ। फिर बच्चों से बोले– अरे लड़कों! थोड़ी मूंगफली और ले आओ। वे बैठे भोजन कर रहे थे, उनको कौन चिंता थी! वे जानते थे, घरेलू मामला है, थोड़ी देर में समझौता तो हो जाना ही है।

तब रामजी ने कहा– मेरे अश्वमेध का घोड़ा छोड़ दो लड़को! जानते नहीं मैं राम हूँ। वे बोले– उठाओ धनुष, मैं रावण नहीं हूँ। जब रामजी ने बाण उठाया तो वाल्मीकिजी बीच में आ गए, बोले– राम! क्या बच्चों से मचलाई ठान रखी है? माना कि राजहठ होता है लेकिन बालहठ टकरा जाए तो राजहठ को पीछे हट जाना चाहिए। रामजी बोले– गुरुदेव! ऋषिवर! आपके शिष्य बड़े ढीठ हैं। कृपया हमारा घोड़ा दिलवा दीजिए, नहीं तो हमारा तो वैसे ही नाश हो जाएगा, अश्वमेध यज्ञ विध्वंस हो जाएगा। वाल्मीकि ने कहा– लड़कों! छोड़ दो रे, घोड़ा छोड़ दो। तुरंत छोड़ दिया।

वाल्मीकि ने पूछा– यह बताओ, बाँधा क्यों? कुश बोले– गुरुदेव! भैया लव को रामजी से एक प्रश्न पूछना था। उतने बड़े आदमी से भेंट कैसे होती?, तो हम लोगों ने सोचा, घोड़ा बाँध लो, छुड़ाने आएंगे तो पूछ लेंगे। रामजी बोले– पूछो, क्या प्रश्न है? वे बोले– जो सीता अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण हुई, जिसने लंका के ऐश्वर्य को तुच्छ माना, कंटकाकीर्ण पथों पर साथ चली, अवध के साम्राज्य को भी उसने बिल्कुल तिनके की तरह त्याग दिया, छाया की तरह साथ चलनेवाली, अग्नि परीक्षा में सर्वोपरि उत्तीर्ण, वो सच्ची देवी, उसका आपने परित्याग क्यों कर दिया? रामजी बोले– बच्चों! यह थी राजनीति।

राजनीति का सूत्र बड़ा सूक्ष्म होता है। महर्षि वाल्मीकि के पास इतने दिव्यास्त्रों का भंडार था, अगस्त्य, विश्वामित्र, वशिष्ठ से जो शिक्षा रामजी ने ली थी, उनसे भी आगे का था क्योंकि डाकू जो रह चुके थे। चतुरंगिणी

सेनाओं ने उस दस्यु का पीछा किया, पाये कभी नहीं। सारी फौज को धराशायी करके वह निकल जाया करें। बड़े दिव्यास्त्रों का अंबार था, पड़ा सड़ रहा था, महात्माजी का भजन भी चौपट कर रहा था। कुछ देर भजन करें, कुछ देर अस्त्रों की रक्षा। और रामजी मांग भी नहीं सकते थे क्योंकि क्षत्रिय कुल ठहरा। और किसी महापुरुष से ले भी नहीं सकते। सीता को भेज दिया, सोचा, सीता सिंहासन में बैठकर क्या करेगी, जंगल में रहने का पक्का अभ्यास भी है, बच्चों की देख-रेख करें। बच्चों की देख-रेख के लिए माँ से बढ़कर कोई होता भी नहीं, इसलिए सीता को वन में भेज दिया।

वाल्मीकि विचार में पड़े कि आखिर कारण क्या है, वन में सीता क्यों आई?, इतने में सूचना आई कि सीताजी ने दो पुत्रों को जन्म दिया है। वाल्मीकि खुश हो गए– देख लूँगा रामबाण को, देख लूँगा लंका वजियवाहिनी को, अवध के महाराजा चक्रवर्ती सम्राटों की चतुरंगिणी सेना को। और बच्चों को दिव्यास्त्र सिखाने लगे। बारह साल के होते-होते घोड़ा पकड़ लिया और सारे दिव्यास्त्र असफल, दोनों बच्चे उत्तीर्ण। जो शस्त्र वहाँ सड़ रहे थे, रामजी के पास आ गये। यह राजनीति है। राजनीति का तात्पर्य होता है– रिजल्ट सामने आवे, योजना कभी नहीं सुनाई पड़े, वह सफल होता है। योजना लीक हो गई तो कभी सफल नहीं होता। शुभ काम तुरन्त आरंभ कर दो। फूल लगाऊँगा, फिर महकेगा, ऐसा नहीं। फूल लग भी जाए, खुशबू दिखाई पड़े, लोग खड़े हो जाए बोले– इतनी मधुर खुशबू। शुभ काम को कर देना चाहिए। अशुभ में परामर्श अनिवार्य है।

भगवान श्रीराम की इस राजनीति का किसी को ज्ञान नहीं था। अन्त में वाल्मीकिजी बोले-राम! मुझे याद नहीं है कि जिन्दगी में हमने कभी झूठ बोला। मैं प्रचेता का दसवाँ पुत्र वाल्मीकि मैं सत्य कहता हूँ, कि ये लव और कुश दोनों आपके ही पुत्र हैं, इन्हें अपनाइए।

भगवान श्रीराम ने दोनों पुत्रों को अपना लिया और सीता से कहा– सीते! चलो। अब भविष्य में कोई दुःख नहीं, चलो सिंहासन की शोभा बढ़ाओ।

धोबी ने भी अपनी त्रुटि स्वीकार किया किंतु सीता ने कहा– प्रभो! आप तो जानते ही हैं, पृथ्वी पर तो मेरी आयु के दिन ही पूरे हो गए। उन्होंने धरती माता से प्रार्थना किया, कि हे धरती माँ! मन-क्रम-वचन से कभी भगवान श्रीराम के अलावा किसी की ओर भी दृष्टि न डाली हो, भगवान श्रीराम ही मेरे सर्वस्व रहे हों, तो हे धरती माँ! मुझे अपने गोदी में स्थान दें, इस संसार में मैं परीक्षा देते-देते ऊब चुकी हूँ, मेरी अन्तिम प्रार्थना है कि जब भी मैं जन्म लूँ तो पतिरूप में भगवान श्रीराम ही मुझे मिलें। और सीताजी पृथ्वी में समाहित हो गईं। भगवान राम ने आदेशों का तांता लगा दिया– चलो, सिंहासन पर बैठो। लेकिन अनसुना करके सीता पृथ्वी में समा गई। रामजी बहुत क्रोधित हुए कि पृथ्वी उलट दूँगा, वशिष्ठ ने बीचबचाव किया तथा महर्षि वाल्मीकि ने भी समझाया।

इस तरीके से जिस कन्या के सुख के लिए जो दिया गया था, उस कन्या को तो उससे दस दिन भी सुख नहीं मिला। सुख मिला तो महापुरुषों की कुटिया में, भगवान के भजन में।

मानस में भगवान शिव माता पार्वती से कहते हैं–

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना।।

(मानस, 3/38/5)

हे पार्वती! मैं अपना निजी अनुभव कहता हूँ कि सत्य हरि और हरि का भजन है, जगत सब सपना है।

वास्तव में राम मानव मात्र के हैं। जिन्हें दुर्लभ मानव तन उपलब्ध है, उनके हैं। यह मजहब, यह विविध प्रकार के बड़े-बड़े संप्रदाय यह तब पैदा हो गये जब भारत में गुरुओं का पद विलासी लोगों के हाथ में लग गया। विलासी लोग क्या जाने धर्म-कर्म?, जो करते थे, उसी को धर्म कहने लगे। अंत में यहाँ तक गिरावट आई कि प्रभु को, परमात्मा को, एक तत्त्व को धारण करना धर्म नहीं है; धर्म है भुईयाँ-भवानी पूजना, धर्म है देवी-देवता पूजना। पूरे भारत का पुरोहित वर्ग भगवान को छोड़कर सबकी पूजा करवाता है।

शादी-विवाह में नहीं देखते हो.... डीह के देवता, गाँव के देवता, फिर पता नहीं कौन देवता। गणेशजी से पहले शुरू करेंगे, फिर कौन-कौन... कौन-कौन? हर घर का देवता अलग, घर गाँव का देवता अलग, हर प्रांत का देवता अलग। पुरोहित वर्ग इस उधेड़बुन के ऊपर उठता ही नहीं, और पुरोहितों का दिया हुआ ज्ञान ही धर्म का पैमाना रह गया। इन्होंने जो कुछ दिया, वह धर्म का पैमाना नहीं था, बस गलती यही से हो गई। राजा-महाराजाओं के पास बैठकर उन्होंने जो कह दिया, वो सही। दस्तखत करवा लिया, बस!

धर्म महापुरुषों की हृदय की वस्तु है। भगवान कृष्ण ने कहा– अर्जुन! ज्ञान क्या?, सत्य क्या?, तत्त्व क्या?, धर्म क्या?– यह संदेह हो तो किसी तत्त्वदर्शी महापुरुष के पास जाकर निष्कपट भाव से सेवा और प्रश्न करके, तुम उस ज्ञान को प्राप्त करो। वे तत्त्व के ज्ञाता तुझे उसका उपदेश करेंगे। उनसे जान लेने के पश्चात् तुम्हें जीवन में कभी सन्देह नहीं होगा। यह शिक्षा उन तत्त्वदर्शियों के हृदय की उपज है, वो इसके मास्टर, विशेषज्ञ हैं, **'जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी॥'** (मानस, 4/17/7)– वे मुनि-ज्ञानी जिन्होंने भगवान के चरण-कमलों में प्रीति जोड़ ली है। रामायण में जो लिखा है, इस चरित्र को केवल वो जानते हैं, और कोई नहीं जानता।

रामायण की पूर्णाहुति में कहा गया–

कहिअ न लोभिहि क्रोधहि कामिहि। जो न भजइ सचराचर स्वामिहि॥
द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ॥

(मानस, 7/127/4-5)

राम भगति जिन्ह कें उर नाहीं। कबहुँ न तात कहिअ तिन्ह पाहीं॥

(मानस, 7/112/13)

अभी विचार करके देखें कि यह इतने लोग बैठे हैं, लोभ है, मोह है, राग है, द्वेष है। जब सभी भरा पड़ा है, आखिर कहा किससे जाय?

रामायण की शुरुआत में रामायण पढ़ने की विधि गोस्वामीजी ने बता दिया कि रामायण हमें समझ में कब आएगी? समझने के लिए हम कौन सा

उपाय करें? तो–

श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती।।
दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू।।

(मानस, बालकाण्ड, चौ.5-6)

गुरु महाराज के चरण रज, नखों की ज्योति मणि-माणिक्य के तुल्य है। इसका सुमिरन करने से हृदय में दिव्यदृष्टि का संचार होता है। यह मोह से उत्पन्न अंधकार को शांत करनेवाला है। वो लोग बड़े भाग्यशाली हैं जिनके हृदय में चरण आ जायें।

किसी ने कोशिश किया, श्रम किया और चरण हृदय में आ गए तो लाभ क्या? **'बड़े भाग उर आवइ जासू'**– वह बड़ा भाग्यशाली है जिसके हृदय में गुरु महाराज के चरण आ जाए। चरण आने से लाभ क्या है?

उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।

(मानस, बालकाण्ड, चौ.7)

हृदय के निर्मल नेत्र खुल जायेंगे (जो अर्जुन के खुले थे), आवागमन के दोष और दुःख मिट जायेंगे।

सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।।

(मानस, बालकाण्ड, चौ.8)

तब फिर आँख खुलते ही रामचरित मणि माणिक सूझने लगता है। **'गुपुत'**– जो लिखने में नहीं आ सका, **'प्रगट'**– जो लिखने में आ गया है, अथवा **'जो जेहि खानिक'**– उस परात्पर ब्रह्म के अंतराल में जो भी रहस्य छिपा, वह भी विदित हो जाएगा। तो आँखें तो फूटी है, रामायण कहाँ से देखोगे? तो रामायण देखने की विधि गुरु महाराज की शरण और अभ्यास। यह विधि जानते हैं– **'जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी।।'**

गीता का ही अनुवाद गोस्वामीजी ने किया है। अर्जुन! परिज्ञाता, पूर्णज्ञाता किसी महापुरुष के पास जाओ। अर्जुन ने पूछा– अमृत का भोजन और सनातन

ब्रह्म में स्थिति मिलती है, यह ज्ञान कैसे प्राप्त करूँ? तो किसी तत्त्वदर्शी की शरण जाओ, वह तत्त्व के ज्ञाता तुझे उपदेश देंगे। तो जिनके श्रीमुख से शास्त्र प्रसारित हुआ, उन्होंने तो इसे समझने की विधि बता दिया। और उस विधि को जाने बिना, कागज काला करके कोई अर्थ ढूँढ़ना चाहे तो समाज में दरार डालेगा, और कुछ नहीं करता। मानस अन्दर की चीज है, योग साधना की विधि है और बाहर सामाजिक हमारा सम्पूर्ण इतिहास है, संस्कृति शास्त्र है, मर्यादा शास्त्र है और यह रामलीलाएं खुली पुस्तक हैं, चित्रकथा हैं। यह पूर्वजों का पढ़ाने का तरीका है, यह सदा होना चाहिए। यह कभी पुराना नहीं पड़ेगा। बच्चों को जो देखने से प्रभाव पड़ जाता है, वह पढ़ने से नहीं पड़ता। मास्टर लोग जो पढ़ाते हैं, उसको लोग कम पढ़ते हैं, और मास्टर साहब सिगरेट कैसे पीते हैं?, तो लड़के आड़ में खड़े होकर लकड़ी मुँह में डालकर देख लेंगे। इसलिए शिक्षक को चरित्रवान होना चाहिए। उसका चरित्रवान होना ही एक शिक्षा का सन्देश जाता है। रामलीला एक चरित्र है, इससे सच्चा सन्देश जाता है।

भगवान की भक्ति कहने में बड़ी सरल है, करने में बड़ी कठिनाई होती है, विरह में डूबकर लगना होता है। भगवान के विरही भक्तों की रहनी कुछ और होती है। भरत को **'एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती।।'** (मानस, 2/211/1) मीरा की वही दशा थी, गोपियों की वही दशा थी।

जब भगवान गोकुल से मथुरा आए तो मथुरा में उनका एक चचेरा भाई था– महाज्ञानी ऊधौ। वह बड़बड़-बड़बड़ चौबीस घंटे लगाए रखे। भगवान श्रीकृष्ण ने सोचा– इस मूर्ख को अब सुधारना ही होगा। वह भगवान की दृष्टि में वज्र मूर्ख था, केवल कहानी भर रट रखा था। सब कुछ सीख समझ लेने के पश्चात् चलना बाकी रह जाता है। उसमें क्रियात्मक कुछ नहीं था, दिनभर बकझक-बकझक लगाए रहे। 'ज्ञानी ऊधो! ज्ञानी ऊधो!' की डिग्री जो मिल गई थी।

एक दिन भगवान ने मुँह लटका लिया। उधौ बोले– भैया! ऐसा कौन संकट आ गया, आप आज बहुत खिन्न हैं, बहुत उदास हैं? भगवान बोले– भैया! मैं वास्तव में दुःखी हूँ। उधौ बोला– ऐसा क्या दुःख? आप हमें तो बताइए, मैं अवश्य सहयोग करूँगा। भगवान बोले– ऊधौ! मुझे तुमसे यही उम्मीद थी। मैं दुःखी हूँ गोपियों के लिए। कैसे उन्हें समझाऊँ, मेरे सिर पर कितना राजकाज का भार है? मैं यह निपटाऊँ कि वहाँ जाऊँ? उन्होंने खाना-पीना छोड़ दिया, पति और पुत्र त्याग दिए, दूध, दही, गोरस, माखन, सब धन-सामग्री त्याग दिया, और करील के कुंजों में मेरे वियोग में दिन-रात कृष्ण-कृष्ण-कन्हैया-कन्हैया रट रही हैं। मैं कैसे समझाऊँ कि मैं यहाँ पर किन परिस्थितियों से घिरा हूँ? जरासंध के बर्बर हमले हो रहे हैं। अब उन्हें कैसे समझाऊँ, यही हमें दुःख है, उनके दुःख से मैं दुःखी हूँ।

उधौ बोले– आप बिल्कुल निश्‍िंचत रहे केशव! मैं जाता हूँ। भेदभक्ति से हटाकर, उनको ब्रह्मज्ञान दे दूँगा। भगवान कृष्ण ने कहा– उधौ! तुम जल्दी जाओ। हम जानते थे, तुम जरूर हमारी सहायता करोगे, जाओ।

जहाँ उधौ को देखा तो गोपियाँ खड़ी हो गईं, सादर अभिवादन किया– उधौ जी! हमारे कन्हैया को देखा? वो कैसे हैं? उधौ बोले– हाँ, ठीक हैं, कुर्सी पर बैठे हैं, मुकुट लगाए हैं, मोरपंख भी है, उनका क्या बिगड़ा है? गोपियाँ बोली– वो हमें कभी याद करते हैं? उधौ बोले– क्या भेदभक्ति में पड़ी हो! तुम आत्मा हो, तुम शुद्ध हो, तुम योग की दृष्टि से देखो। लगे अपना ब्रह्मज्ञान बताने, तब राधा ने कहा–

ऊधौ मन न भये दस बीस।

मन केवल एक,

एक हुतो सो गयो श्याम संग, को अवराधै ईस॥

ऊधौ मन न भये दस बीस।

मन दस-बीस नहीं हुए। मन केवल एक, वो श्याम के साथ चला गया। दूसरा मन है ही कहाँ जिससे कि हम तुम्हारी योग-साधना साधे?

थोड़ा सत्संग आगे चला, उधौजी राधिका के चरणों में गिर पड़े। गए थे योग सिखाने और भक्ति सीखकर लौट आए। इसलिए तो भगवान ने भेजा ही था। तो–

हँसि हँसि कन्त न पाइयाँ, जिन्ह पाया तिन रोय।
हँसी खुशी जो पिउ मिले, कौन दुहागिन होय॥

हँस-हँसके किसने पाया? जिन्होंने पाया है, अनुनय-विनय करके, प्रार्थना करके प्राप्त किया है। भक्ति का प्रथम चरण, जागृति इसी से है कि-

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें॥

(मानस, 3/15/11-12)

मेरे गुण गाते समय गदगद कण्ठ हो, आँखों में अश्रु आ जाए, शरीर पुलकित हो जाए और काम इत्यादि कोई दुर्गुण न हो, मैं निरंतर उसके बस में होता हूँ। दूसरी बात,

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥

(मानस, 2/129/5)

प्रभु! केवल आप। बाल्मीकिजी ने कहा कि भगवन्! आपको छोड़कर अन्य किसी का भरोसा न हो, उसके मन के अंतराल में आप निवास करें, वह आपका सुंदर मन्दिर है, निवास-स्थान है। भगवान राम ने कहा–

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥

(मानस, 7/45/3)

यदि किसी अन्य की आशा करता है तो तुम ही बताओ, वह कितना मुझ पर विश्वास कर रहा है? तो भगवान एक, उनकी शरण के बिना कहीं कल्याण नहीं। लेकिन भ्रांति इतनी भयंकर कि पापा जा रहे हैं शंकरजी का दर्शन करने, बेटा जा रहा है संकटमोचन, मम्मी जा रही है दुर्गाजी दर्शन करने और नाती अपने डीह माई पर। एक भयंकर भ्रान्ति कि भगवान भी दो-चार होते हैं।

हमारे सब तीरथ आशीर्वाद लेने के लिए हैं।

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई॥

(मानस, 7/125/4)

ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥

(मानस, 7/48/2)

दान करो, दया करो, इन्द्रियों का दमन करो, सम्पूर्ण तीर्थों का अवगाहन करो, सारे मन्दिरों का दर्शन करो।

ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥

यह सब धर्म हैं, श्रुतियों ने गायन किया है, सत्पुरुषों ने आदेश दिया है– **'जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन।'**, किंतु-

सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई॥

(मानस, 7/119/18)

सबका फल है– हरि की भक्ति। सारे तीर्थों के दर्शन का, विविध मंदिरों का, तीर्थों के अवगाहन का, दान करो, दया करो, दमन करो–सबका फल है हरि की भक्ति। परमात्मा का एक नाम हरि। जिस पर अनुकंपा करते हैं, शुभाशुभ हर लेते हैं। जो जन्म-मृत्यु का कारण है, उन सारे शुभाशुभ संस्कारों को, कर्मों को हर लेते हैं और बदले में अपना सहज स्वरूप प्रदान कर देते हैं, इसलिए प्रभु का एक नाम हरि। सबका फल है हरि की भक्ति। और जो साधक भक्ति के पथ पर आ गया तो–

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥

प्रभो! केवल तुम्हें छोड़कर, अन्य किसी का आसरा न हो। श्रद्धा राधा की तरह एक जगह टिक गई हो, मन समर्पित हो गया हो, प्रभो! उनके हृदय में आप निवास करें।

लेकिन भक्ति यहाँ से तो आरम्भ है। जप, तप, नियम, योग, ज्ञान, दया, दम तीर्थ, मज्जन से भक्ति जागृत हो गई तब भक्ति की लड़ी-कड़ी

कुछ और। तुलसीदासजी ने एक भजन में भक्ति की बारीकियों पर प्रकाश डाला–

रघुपति-भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई॥1॥
जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल-प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी॥2॥
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ, बलतें न कोउ बिलगावै।
अति रसग्य सूच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै॥3॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत-बियोगी॥4॥
सोक मोह भय हरष दिवस-निसि देस-काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं॥5॥

- - - - - -

रघुपति-भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई॥1॥

भगवान की भक्ति करने में बड़ी कठिनाई है, कहने में सुगम है। खट-खट-खट बता दो, थ्योरी रटने में कितना देर लगता है!

कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई॥1॥

जिससे करते बन गई, वही भक्ति जानता है। भक्ति क्रियात्मक है, एक परिणाम है। फिर भक्ति एक कला है–

जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल-प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी॥2॥

जो जिस कला में कुशल है, उसके लिए वह सुगम है, सुखकारी है। छोटी-सी मछली धारा का सहारा पाकर छत पर चढ़ जायेगी। मछलियाँ नदियों

में जब धारा का वेग आता है तो हिमालय चढ़ जाती हैं। वो उल्टी चाल तैरना जानती हैं, वह तैरने की कला जानती हैं। और दुर्जय हाथी, बलशाली हाथी बह जाता है, उलट-पलट के मर भी जाता है। भक्ति एक कला है।

ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ, बलतें न कोउ बिलगावै।
अति रसग्य सूच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।3।।

जो जिस कला में कुशल होता है, उसके लिए वह सुगम है, सुखदाई है। जैसे चीनी की पोटली गंगाजी के रेत में छूट गयी, कोई बल करके भी अलग नहीं कर पाता किन्तु उसकी रस-विशेषज्ञ चींटी एक-एक कण उठाकर खा लेती है। ऐसे ही भक्ति एक कला है।

अंत में भक्ति में होता क्या है?

सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत-बियोगी।।4।।

सारे दृश्य, प्रपंच को अपने हृदय में रखकर, निद्रा का त्याग करके योगी सो जाता है, निश्चिन्त शयन करता है। वह हरि के पद का अनुभव करता है, पारब्रह्म परमात्मा राम के पद का अनुभव करता है। भला वह राम हैं कैसे? **'अतिसय द्वैत-बियोगी'**। द्वैत माने हम अलग और भगवान अलग, इसका नाम है द्वैत। **'अतिसय द्वैत-बियोगी'**– जहाँ द्वैत का आभास भी नहीं। हमसे भिन्न कोई परमात्मा नहीं। एक ईंट का टुकड़ा हृदय में रख दो तो कल मौत हो जाएगी। पथरी हो जाती है तो कभी-कभी जय सियाराम हो जाते हैं, यह झाड़-पहाड़, ग्रह-उपग्रह, धन-दौलत, पृथ्वी, लड़का-बच्चा हृदय में कोई कैसे रख लेगा?

मनुष्य वहीं रहता है जहाँ उसका मन रहा करता है, मन की वृत्ति रहती है। इस मन की चित्तवृत्ति को समेटकर हृदय-देश में स्थिर कर लो।

तुलसिदास कह चिद-बिलास जग बूझत बूझत बूझै।।

(विनयपत्रिका, 124)

तुलसीदासजी ने कहा– चित्त का पट प्रसार ही जगत है। यह बात अभ्यास के द्वारा समझ में आते-आते समझ में आती है। तो चिद (चित्त) के विलास को समेटकर हृदय-देश में स्थिर कर लो। अब दृश्य जिस पर अंकित होकर प्रसारित होता था, वह चित्त सिमटकर हृदय में स्थिर हो गया, वृत्ति शान्त प्रवाहित हो गई, दृश्य से सम्बन्ध टूट गया। दृश्य जिस पर अंकित होता है उस चित्त को हृदय में स्थिर करते ही **'सकल दृश्य निज उदर मेलि'**– जहाँ चित्त दृश्य-प्रपंच से सिमटकर, अपने दृश्य का खाता लेकर हृदय-देश में जब स्थिर हो जाता है तहाँ फिर जगतरूपी रात्रि, मोहरूपी निद्रा से वह सदा के लिए जग जाता है– **'सोवै निद्रा तजि जोगी'**।

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।।

(मानस, 2/92/2)

मोहरूपी रात्रि में सभी लोग **'सोवनिहारा'**– सब निष्चेष्ट पड़े हैं, अचेत पड़े हैं। रात-दिन दौड़-धूप करते हैं, मात्र स्वप्न देखते हैं। इस मोहनिशा की अचेत अवस्था को त्यागकर.... साधक की जब मोहनिशा की अचेतावस्था खत्म हो गई, निद्रा का त्याग कर दिया तब फिर **'सोवै'**– फिर वह अपने आत्मस्वरूप में निश्चिन्त हो जाता है। सोता वही है जिसे फिक्र न हो। वृत्ति शांत प्रवाहित है, बाहर उसका प्रयोजन शांत हो गया है, इस निरोध के साथ ही भगवान आपमें दृष्टि बनकर खड़े हो जायेंगे, सामने स्वयं; नहीं समझोगे तो समझा लेंगे। तो–

सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत-बियोगी।।4।।

जहाँ चित्तवृत्ति हृदय-देश में शांत प्रवाहित हुई, स्थायित्व लिया, तत्क्षण वो हरि के पद का अनुभव करता है। जो सर्वस्व हर ले, बदले में अपना स्वरूप प्रदान कर दे, उन अविनाशी परमात्मा के पद को अनुभव करता है। तो भला वो भगवान है कैसे? तो, **'अतिसय द्वैत-बियोगी'–** एक तो द्वैत वियोगी कि हम द्वैत नहीं मानते, हम तो अद्वैतवादी हैं। अरे! वाद-विवाद तो बुद्धि की विलास है। **'अतिसय द्वैत-बियोगी'** अर्थात् द्वैत का आभास भी

नहीं अर्थात् भगवान भी भिन्न नहीं रह गए।

वहाँ मिलता क्या है?

सोक मोह भय हरष दिवस-निसि देस-काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं॥5॥

शोक नहीं, मोह नहीं, सृष्टि में ऐसा कुछ भी नहीं कि हमें हर्षित कर दे। ऐसा कुछ भी नहीं कि हमें दुःख दे दे, भय प्रदान कर दे, '**सोक मोह भय हरष दिवस-निसि**'– दिन और रात भी नहीं। '**देस-काल तहँ नाहीं**'– काल का आना-जाना नहीं।

तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं॥5॥

तुलसीदासजी कहते हैं– इस दशा के हीन अर्थात् जब तक यह दशा नहीं प्राप्त होती, तब तक '**संसय निरमूल न जाहीं**'– तब तक वह '**संशयात्मा विनश्यति**' (गीता, 4/40)– वह संशयात्मा है, उसके लिए खतरा सदा मँडरा रहा है, निर्मूल संशय नहीं होता। तो भगवान जब अपनाते हैं तो अपने स्वरूप में समाहित कर लेते हैं। अलग छोड़ दिया तो बेचारा जीव का जीव है, कल्याण क्या? तो भक्ति की चरमोत्कृष्ट अवस्था है कि प्रभु अपने में समाहित कर लें। इसी का नाम धाम है, इसी का नाम है परम गति। भक्ति भगवान की भिन्नता जब तक है तब तक साधक। समाहित हो गया, साधना खत्म। पहले विभक्ति माने विभाजन, अलगौजी। अब समाहित हो गया तो विभक्ति खत्म हो गई, इसी का नाम है शुद्ध भक्ति।

कागभुशुण्डि आरंभ में जब साधना-पथ पर आए तो उग्र बुद्धि थी- '**उग्रबुद्धि उर दंभ बिसाला**' (मानस, 7/96/3)– कागभुशुण्ड में प्रचंड बुद्धि थी, हृदय में विशेष दंभ था। एक दिन गुरु महाराज आए, अभिमानवश उठकर प्रणाम नहीं किया।

एक बार हर मन्दिर जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम॥ (मानस, 7/106क)

हर (शंकर जी) के मन्दिर के भीतर बैठे थे। और यहाँ हरिजन शंकरजी के मन्दिर में चले गए तो लोगों ने कहा– मंदिर भ्रष्ट हो गया, शंकरजी नदारद हो गये। जिसके तेज के अंशमात्र से सृष्टि का सृजन, पालन और परिवर्तन होता है, वह भगवान ही नष्ट हो गए। जीव के छूने से परमात्मा ही खत्म, फरार हो गया, वहाँ है ही नहीं। दूसरा मन्दिर बना डाला। ये अंधविश्वास अज्ञानियों की देन है। और **'जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी।'** (मानस, 4/17/7)– मानस मुनियों के हृदय की वस्तु है।

कागभुशुण्ड ने अभिमानवश प्रणाम नहीं किया तब भोलेनाथ ने कहा– अरे मूढ़! गुरु को क्रोध नहीं तो क्या हुआ, मैं तुम्हें अवश्य श्राप दूँगा। जा, एक हजार जन्म भोग, अजगर हो जा।

हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप।। (मानस, 7/107क)

तब गुरु महाराज ने बीच-बचाव किया, भोलेनाथ की भरपूर स्तुति की– **'नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।।....** (मानस, 7/107/1)'

जब शंकरजी प्रसन्न हो गए तो गुरुजी बोले– प्रभो! इस गरीब का तो कोई दोष नहीं है। इस बेचारे का कोई दोष नहीं है। यह जो कुछ कर रहा है, आपकी माया से आक्रान्त होकर कर रहा है। माया नचा रही है, यह नाच रहा है।

तव माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु कृपासिंधु भगवान।। (मानस, 7/108ग)

आपकी माया से आक्रान्त होकर, विवश होकर बेचारा जाल में फँसे हुए पशु की तरह छटपटा रहा है। यह जीव है, यह जड़ है, इस पर क्रोध न करें। प्रभो! जब आप ऐसे स्वयं प्रभु की ही इस अधम जीव पर दृष्टि पड़ गई तो,

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना।।

(मानस, 7/108/1)

इसका परम कल्याण हो, वह कर डालें प्रभो!

भोलेनाथ खुश हो गए, बोले– यह दुष्ट इसी लायक था, फिर भी आपकी साधुता देखकर मैं इस पर विशेष कृपा करूँगा। पहली कृपा तो यह है कि–

जनमत मरत दुसह दुख होई। एहि स्वल्पउ नहिं ब्यापिहि सोई।।

(मानस, 7/108/7)

हजार जन्म तो अवश्य लोगे, लेकिन जन्मने और मरने में जो असह्य दुःख होता है, तुम्हें पता ही नहीं चलेगा, स्वल्प मात्र भी नहीं। चूहा हो जाओगे तो बिल्ली भी नहीं छूएगी। तुमको बिल्ली ने छू दिया तो दुःख हो गया न। निर्द्वंद्व विचरण करो। बड़ा बढ़िया आशीर्वाद दिया। हमें मिल जाता, हम तो अब स्वीकार कर ले। कह देंगे साइबेरिया ले चलो प्रभो! साइबेरिया है ना बर्फीला भाग, पहले भालूवाला शरीर। जब दुःख होना ही नहीं तो खाली ड्रेस ही पहना, रामलीला की तरह। और क्या हो गया।

कवनेउँ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना। सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना।।

(मानस, 7/108/8)

चाहे बम्बई जाओ, चाहे घर में, ज्ञान ज्यों-का-त्यों। बम्बई चले जाते तो क्या घर भूल जाता है? किसी भी जन्म में गुरुदेव ने जो ज्ञान दिया वह विस्मृत नहीं होगा। अंत में तुम्हें राम की भक्ति प्राप्त होगी।

पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें। राम भगति उपजिहि उर तोरें।।

(मानस, 7/108/10)

पुरी का प्रभाव..... अवधपुरी में जो जन्म हुआ इस पूरी का प्रभाव, मेरी अनुग्रह से तुम्हें राम की भक्ति प्राप्त होगी, जाओ।

शंकरजी ने आशीर्वाद दे दिया - अविरल रामभक्ति – एक बार जागृत हो गई तो सृष्टि में कोई ऐसी रुकावट नहीं कि उसको काट दे, खंडित कर

दे। क्रम न टूटे, वह अविरल राम की भक्ति प्राप्त हो गई। एक आशीर्वाद।

जब अन्तिम जन्म ब्राह्मण का पाये। आरम्भ में शूद्र, अल्पज्ञ अवस्था थी, अब ब्रह्म में विलय की योग्यतावाला स्तर आ गया। तब फिर माता-पिता ने शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था कर दी-

प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। समझउँ सुनउँ गुनउँ नहिं भावा॥

(मानस, 7/109/5)

मैं मूर्ख नहीं था, भली प्रकार समझ रहा था कि यह लोग कह-क्या रहे हैं? मास्टर पढ़ा रहे थे– ककहरा, भूगोल, खगोल, अकबर कहाँ मरा तो हुमायुँ ने क्या किया?, महाराणा कितने लड़े? अभी बेवकूफी पढ़ने को फालतू था? गुरुदेव का आध्यात्मिक ज्ञान उसे विस्मृत नहीं था और वह वहाँ मिल नहीं रहा था। उससे आगे की जानकारी उसके पास थी, क्योंकि विस्मृत होना ही नहीं था। कागभुशुण्ड ने केवल कपड़े (तन) बदले थे, वह ज्ञान ज्यों-का-त्यों। अब लगे सब ककहरा पढ़ाने, कागभुशुण्ड बोले– ये लोग केवल समय नष्ट कर रहे हैं। **'प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा।'** मैं मूर्ख नहीं था, समझ रहा था। **'समझउँ सुनउँ गुनउँ'**– सुनता था, समझता था, विचार भी करता था, **'नहिं भावा'**– वहाँ हमारे स्वाद का कुछ था ही नहीं। उनके अन्दर उससे ऊँची अवस्था थी, भक्ति जो जागृत है, प्रभु में प्रेमाभक्ति।

प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई॥

(मानस, 7/109/8)

पढ़ा-पढ़ाकर हताश हो गए लेकिन हम नहीं पढ़े।

भए कालबस जब पितु माता। मैं बन गयउँ भजन जनत्राता॥

(मानस, 7/109/10)

पिताजी जब काल-कवलित हो गए, **'मैं बन गयउँ भजन जनत्राता।'**– उन प्रभु की प्राप्ति के लिए मैं वन में चला गया।

जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पावउँ। आश्रम जाइ जाइ सिरु नावउँ॥

(मानस, 7/109/11)

मुनीश्वर मिले, सिर झुकाता था। **'मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन।'** (मानस, 7/110ख)**-** महर्षि लोमष से भेंट हो गई, उन्होंने कहा– तू ब्रह्म है। काग बोले– महाराज! वो उपदेश करें,

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा॥

(मानस, 7/110/11)

उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा॥

(मानस, 7/110/14)

उत्तर-प्रतिउत्तर किया तो मुनि के शरीर में क्रोध के चिन्ह प्रगट होने लगे। आँखें थोड़ी लाल हो चली, बोले– रे दुष्ट! कौवे की तरह कांव-कांव लगा रखा है सुबह से, अरे सठ! तुम्हें अपने पक्ष का बड़ा हठ है, जा, चांडाल पक्षी कौआ हो जा। श्राप दे दिया।

कागभुशुण्डिजी को कोई दुःख नहीं हुआ बल्कि बहुत आह्लादित हो गए जैसे कुछ पा गए हों।

तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ॥ (मानस, 7/112क)

तुरंत कौवा हो गया। सादर मुनि के चरणों में प्रणाम किया और **'हरषित चलेउँ उड़ाइ'**– हर्ष के साथ उड़ चले। वाह रे प्रभो! यह अच्छा हेलीकॉप्टर पकड़ा दिया। किसी जन्म में ज्ञान तो मिटना ही नहीं था। कलेवर ऐसा था, वैसा हो गया–बात इतनी सी। रोड में चलने से ठोकर है, फिर सर्प है, बिच्छी है, गड्ढा है, कीचड़ है, यह अच्छा हेलीकॉप्टर बना दिया। बड़ी कृपा हो गयी दीनबन्धु! जाऊँगा काशी, प्रयागराज, लौटकर चला आऊँगा आश्रम में।

'हरषित चलेउँ उड़ाइ'– आपको कौवा बना दें तो क्या करोगे? हर्ष करोगे? दुःख करोगे न, वह तो दण्ड हो गया। लेकिन बड़े हर्षित होकर चले, प्रभो! अच्छी सुविधा दे दिया।

मेरे अन्दर न भय था न दीनता थी, हर्षित होकर भगवान के चरणों को हृदय में स्मरण करके उड़ चला। तब मुनि लोमष ने प्यार से मुझे अपने

पास बुलाया, समझाया, साधन का उपदेश दिया। वस्तुतः साधना के मुख्य तीन अंग हैं– 1– नाम, 2– रूप, 3– ब्रह्मविद्या (श्रीरामचरितमानस का आध्यात्मिक अर्थ)।

मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा। हरषित राम मंत्र तब दीन्हा।।
बालकरूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना।।

(मानस, 7/112/6-7)

ये महापुरुष बालवत् स्वरूपवाले होते हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।। (गीता, 15/5)

उपर्युक्त प्रकार के समर्पण से जिनका मोह और मान नष्ट हो गया है, आसक्तिरूपी संगदोष जिन्होंने जीत लिया है, **'अध्यात्मनित्या'**– परमात्मा के स्वरूप में जिनकी निरन्तर स्थिति है, जिनकी कामनाएँ विशेष रूप से निवृत्त हो गयी हैं और सुख-दुःख के द्वन्द्वों से विमुक्त हुए ज्ञानीजन उस अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं। ऐसे महापुरुषों की विशुद्ध उपमा बालक से दी गई है, ऐसे सद्गुरु के चरणों का ध्यान।

तीसरा दिया– रामकथा।

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरितमानस तब भाषा।।
सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई।।
रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा।।

(मानस, 7/112/9-11)

शंकरजी की कृपा से मैंने प्राप्त किया है। यह अति गोपनीय है, सृष्टि में कोई नहीं जानता। शंकरजी की कृपा से मैं जानता हूँ, मेरी कृपा से तू जानता है। इसलिए तुम भी याद रखना, जिसके हृदय में रामभक्ति न हो,

उससे कभी मत कहना। क्या था गोपनीय? एक लाख वर्ष से रावण मनुष्य की छाती पर पाँव धरकर चलता रहा, त्राहि-त्राहि हो गया। हाहाकार किया, रावण मारा गया तो सबने खुशियाँ मनाई, दीप जलाया और रामजी अभिषिक्त हो गए।

ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी।।

(मानस, 1/181/12)

ब्रह्मसृष्टि जहाँ तक थी, दसमुख की राजधानी थी। और वहीं पर-

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।

(मानस, 7/19/7)

तीनों लोकों में सबका शोक समाप्त हो गया, दीप जलाए, खुशियाँ मनाई। एक घटना घटी तो संसार ने जाना। रामायण की कथाएं गोपनीय रखी नहीं जा सकतीं। सबने जाना तब तो खुशी मनाई। लेकिन शास्त्र दो दृष्टियों से लिखा जाता है। एक तो जो घटित घटना, उसका चित्रण, इतिहास को विधिवत् कायम रखना। उसके अनुसार हम जीने-खाने की पद्धति तो अवश्य पा जायेंगे, सुसंस्कृत जीवन भी जी लेंगे, किन्तु कल्याण संभव नहीं। इसलिए दूसरा दृष्टिकोण, जिससे शाश्वत हित हो जाए, उनके वरदहस्त के नीचे हम पहुँच जाए, उसके लिए दूसरा दृष्टि है– 'मानस'– राम के चरित्र वे जो आपके मन के अन्तराल में प्रसारित हैं। हैं सबमें, दिखाई नहीं देते। बारीकी से मन का अध्ययन करोगे तो लोभ का चरित्र, मोह का चरित्र, काम-क्रोध-राग-द्वेष का चरित्र दिखाई पड़ेगा, राम का तो नहीं दिखाई पड़ता है। हैं सबमें, दिखाई नहीं पड़ते। वो प्रसुप्त हैं। वो प्रसुप्त रामचरित्र जिस विधि से जागृत होते हैं, वह विधि यह मानस है।

और वो विधि गोपनीय है। वह शंकरजी जानते, लोमष जानते हैं, कागभुशुण्ड जानते हैं और शिष्य-परंपरा में आज भी चली आ रही है। हम पचास प्रकार का सत्संग सुना दे, वह नहीं मिलेगा; और साधक हैं, उनके पास है। यह शिष्य-परम्परा में चला आ रहा है। वह कहने से तो आना नहीं,

वह क्रियात्मक है। उनके हृदय में ज्यों-ज्यों स्तर उठेगा, जागृति मिलती जाएगी।

कहने से लाभ क्या? तो फिर अब तक 'तू ब्रह्म है', 'तू आत्मा है', 'तू पूर्ण है'– यह क्या बवाल था? आजकल है न, कि– मैं तो आत्मा हूँ, संसार नश्वर है, यह मृगतृष्णा का जल है, इसको नश्वर बुद्धि से समझकर, विचारों से समझकर त्याग दो और आत्मस्वरूप में स्थित हो जाओ, कहो, मैं पूर्ण हूँ, शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ.....। और यही लोमष ने सिखाया कि वो भगवान–

मन गोतीत अमल अबिनासी। निर्बिकार निरवधि सुख रासी।।

(मानस, 7/110/5)

वो परमात्मा मन से, इन्द्रियों से अतीत है, निर्विकार है, अपरिवर्तनशील है। और–

सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं बेदा।।

(मानस, 7/110/6)

वो तुम हो। तुममें और उसमें कोई अंतर नहीं। बर्फ और पानी एक ही होता है, गलकर बर्फ भी पानी ही बनता है, ऐसे ही तुम एक हो। 'अहम् ब्रह्मास्मि'। कागभुशुण्ड ने सादर प्रणाम किया, कहा– प्रभो!,

राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना।।

(मानस, 7/110/9)

भक्तिरूपी जल में मन मछली हो रहा है, विलग कैसे होगा प्रवीण मुनीश्वर! मछली को पानी से अलग कर दो तो क्या परिणाम होगा? मौत! इसलिए-

सोइ उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया।।

(मानस, 7/110/10)

वो उपदेश दया करके करिए, मैं नेत्र भरकर प्रभु को देख लूँ।

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा।।

(मानस, 7/110/11)

तब आप जो कहते हो कि मैं ब्रह्म हूँ, मैं आत्मा हूँ, मैं पूर्ण हूँ, सब पँवारा मैं सुन लूँगा, पहले दर्शन चाहता हूँ।

मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंडि सगुन मत अगुन निरूपा।।

(मानस, 7/110/12)

कि तू ही ब्रह्म है। अंत में श्राप भी दे दिया, क्रोधित भी हो गये, बुलाए भी और फिर राम की साधना-पद्धति बता दिया। नाम एक, रूप एक और यह अमरकथा मानस-कथा तीन। आखिर यह कह क्यों रहे थे? तो बोले– लोमषजी का कोई दोष ही नहीं था।

कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी। लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी।।

(मानस, 7/112/2)

उन कृपासिंधु ने लोमष की बुद्धि को भुलावे में डालकर, भरमाकर ऐसा कहवाया, मेरे प्रेम की परीक्षा ली थी।

मन बच क्रम मोहि निज जन जाना। मुनि मति पुनि फेरी भगवाना।।

(मानस, 7/112/3)

मन-कर्म-वचन से प्रभु ने मुझे अपना सेवक समझा, मुनि की बुद्धि को पलट दिया और सादर बुला भी दिया। नाम दिया, ध्यान दिया, मानस चिन्तन कथा दी, अमरकथा सुनाई और आशीर्वाद ऊपर से दिया और कहा कि–

राम भगति अबिरल उर तोरें। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरें।।

(मानस, 7/112/16)

मेरी कृपा से तुम्हारे अन्दर अविरल भक्ति सदा विद्यमान रहेगी। तुम राम को अवश्य प्राप्त कर लोगे। जिस आश्रम में रहोगे, वहाँ अविद्या नहीं व्यापेगी। भरपूर आशीर्वाद दे दिया। एक साधक को जितना चाहिए, उतना दे दिया।

शंकरजी ने कहा– अविरल भक्ति मेरी कृपा से रहेगी। लोमष ने कहा– अविरल भक्ति मेरी कृपा से रहेगी। भक्ति का परिणाम है– भगवान; और जब भगवान मिल गए तो कागभुशुण्डि ने माँगा भक्ति। यह 'मैं ब्रह्म हूँ, आत्मा

हूँ' एक बुद्धि का भ्रम है, कोई साधना नहीं है। वह तो भगवान ने बुद्धि भरमा कर मेरे प्रेम की परीक्षा ली थी। ठोका-बजाया, खरा निकला तो भक्ति का पथ दे दिया। 'ब्रह्म-ब्रह्म' कहने से कुछ नहीं होता, वो कोई मार्ग नहीं। निर्गुण एक स्थिति है, न कि कोई साधना। तो जब दो वरदान – अविरल भक्ति शिव ने दिया, अविरल भक्ति लोमष ने दिया, और जब भगवान मिले तो भगवान ने कहा–

काकभसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि॥

(मानस, 7/83ख)

कागभुशुण्डि! वरदान माँगो। अणिमादिक सिद्धियाँ माँगो, ऋद्धियाँ माँगो, सारे सुख की खान मोक्ष माँग लो।

कागभुशुण्ड घबरा गए कि– अरे! यह ले लो, वह ले लो, बिस्किट ले लो, भक्ति देने का तो नाम ही नहीं ले रहे हैं।

प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही॥
भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे॥

(मानस, 7/83/4-5)

भक्ति देने का तो नाम ही नहीं ले रहे हैं। और भक्ति से हीन मोक्ष वगैरह, सिद्धियाँ वगैरह सब सुख ऐसे हैं जैसे बगैर नमक की सब साग-भाजी। तेरह प्रकार की सब्जी बनाओ, नमक न डालो तो सब गोबर, एक ही जैसा– **'लवन बिना बहु बिंजन जैसे'**।

भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा॥

(मानस, 7/83/6)

भजन और भक्तिहीन सुख किस काम का! ऐसा विचार करके कागभुशुण्डि ने पुनः प्रणाम किया, बोले– प्रभो! सचमुच यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे मनभावता वर दे दें।

जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मो पर करहु कृपा अरु नेहू॥
मन भावत बर मागउँ स्वामी। तुम्ह उदार उर अंतरजामी॥

(मानस, 7/83/7-8)

मैं अपने रुचि का वर माँगता हूँ। आप उदार हैं, अंतर्यामी हैं, जानते ही हैं कि मैं क्या माँगने जा रहा हूँ। माँगा क्या?

अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥ (मानस, 7/84क)

अविरल भक्ति– एक बार जागृत हो जाए, सदा विद्यमान रहे, श्रुति-पुराण जिसका गायन करते हैं, योगेश्वर-मुनिजन जिसकी याचना करते हैं, प्राप्त करते हैं, वही भक्ति मुझे दे दें।

अरे! भक्ति का परिणाम भगवान, और भगवान मिल गए तब भी मांग रहा है भक्ति। आखिर भक्ति है क्या बला? अलग खड़े होकर कुछ देते-लेते हैं तब तक तो विभाजन बना हुआ है, विभक्ति बनी हुई है। हम अलग हैं, देनेवाला कुछ देकर भाग रहा है। भक्ति है कि भगवत्-स्वरूप में विलय हो जाए, और '**रघुपति-भगति करत कठिनाई।**'

अंत में क्या कहते हैं? भक्ति की परिपक्व अवस्था क्या? दृश्य-प्रपंच से चित्त समेटकर हृदय-देश में स्थायित्व ले ले, वृत्ति हृदय में ही शांत प्रवाहित हो जाए, बाहर से न भला उद्वेग ले, न बुरा वातावरण ले, न ही हृदय से कोई उद्वेग उत्पन्न हो। तो,

सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत-बियोगी॥4॥

वह भगवान का पद अनुभव करता है। कैसे हैं भगवान जिनके पद का अनुभव करता है? तो '**अतिसय द्वैत-बियोगी**'– जहाँ द्वैत की कल्पना नहीं, द्वैत का आभास नहीं अर्थात् दर्शन, स्पर्श, प्रवेश और स्थिति मिल जाना, यह भक्ति की चरमोत्कृष्ट अवस्था है। फिर कभी विभाजन नहीं होगा। अलग से देते-लेते हैं तब तो बेचारा साधक है। इसलिए भगवान अलग से दे रहे हैं तो

भी माँगा भक्ति। भक्ति की चरमोत्कृष्ट अवस्था है कि देने के लिए भगवान भी अलग न रह जाए।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाय।
प्रेम गली अति साकरी, ता बिच दो न समाय।।

प्रेम की गली बड़ी सूक्ष्म है, उसमें दो नहीं समा सकते। एक हम थे तो भगवान नहीं थे, अब भगवान हैं तो 'मैं' मिट गया, समाहित हो गया। इसलिए भक्ति की शुरुआत तो है–

हँसि हँसि कन्त न पाइयाँ, जिन्ह पाया तिन रोय।
हँसी खुशी जो पिउ मिले, कौन दुहागिन होय।।

हँस-हँसकर आज तक किसी ने नहीं प्राप्त किया है। जिसने पाया है तो अनुनय-विनय से, प्रार्थना से, डूबकर। और जब मिल गए तब कौन? मिल गया तब विलग भगवान ढूँढ़ने के लिए नहीं रह गया। कहीं भी महापुरुष हुआ है, सबका निर्णय एक। कबीरदासजी का भी वही निर्णय था कि– भक्ति का आरम्भ है–

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बाचा कर्मणा, कबीर सुमिरण सार।।

भाव भक्ति केवल हरि का भजन है। और इस भजन के अलावा जो कुछ भी सृष्टि में है, दूजा कुछ भी है तो '**दूजा दुक्ख अपार**'– जिसका कभी न पार पावे, ऐसा असाध्य दुःख है इसलिए मन से, वचन से, कर्म से '**कबीर सुमिरण सार**'।

एक भजन में कहा– भक्ति शून्य में नहीं फलती, यह सद्‌गुरु के हृदय की उपज है। गुरु महाराज कहे– भजन लिखने में नहीं आता। योग-साधना, भजन-साधना, भक्ति की साधना लिखने से नहीं आती, वाणी के कहने से नहीं आती और रटने से भी नहीं आती; किसी अनुभवी सद्‌गुरु के द्वारा किसी-किसी अधिकारी के हृदय में जागृत हो जाया करती है।

कबीरदासजी कहते हैं– यह भक्ति शून्य में नहीं फलती। पहले मीरा की तरह, राधा की तरह, हर भगत की तरह रुदन से तो शुरू होता है। लेकिन भक्ति की चरमोत्कृष्ट अवस्था है– जब भगवान अलग न रह जाए, दर्शन, स्पर्श और समाहित कर लें। तो–

देखते देखते क्या से क्या हो गया।
गर खुदी गुम हुई तो खुदा हो गया॥

नुक्ता ऊपर नुक्ता नीचे, नुक्ता आता जाता है।
एक नुक़्ते के हेर फेर से ख़ुदा जुदा हो जाता है॥

मन है नुक्ता। इधर लगा हुआ था गाँववाली गलियों में तो जुदा, और भगवान की राह में लग गया तो खुदा। चरमोत्कृष्ट अवस्था खुदा। पढ़ाई में उर्दू में एक शब्द है, नुक्ता ऊपर कर दो तो खुदा पढ़ोगे, नीचे कर दो तो जुदा पढ़ोगे, केवल एक बिन्दु यहाँ से यहाँ रखना है। नुक्ते का उदाहरण दिया। इसलिए भजन अनिवार्य है। भक्ति एक परमात्मा की।

भगवान के स्मरण के लिए यह नहीं सोचना चाहिए कि अभी हमने स्नान नहीं किया या मुख नहीं धोया। इसकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि सुमिरन अन्तःकरण से होता है। चमड़ी धोने या न धोने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। हमारे गुरु महाराज साल-छः महीनों तक स्नान ही नहीं करते थे। उनकी मान्यता थी कि नहाने-धोने में जो समय नष्ट होता है उसे हम भजन में क्यों न लगावें। अस्तु, जीवन के हर मोड़ पर, हर परिस्थिति में, समर्पण के साथ एक परमात्मा का जो बोध कराता है ऐसे एक नाम - ओम् अथवा राम - का जप करो। उस भजन की जागृति सद्‌गुरु से होती है। जब खूब जप करोगे तो भगवान गुरु भी ढूँढ़ कर दे देंगे। पहले तो समझ में ही नहीं आता है कि कौन गुरु है और कौन चेला? भगवान जब अनुग्रह करते हैं तभी समझ में आता है–

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥

(मानस, 7/68/7)

और गुरु के मिलते ही **‘सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ।’** (मानस, 4/17)– संशय और भ्रम का समूल नाश हो जाता है। फिर कभी सन्देह नहीं होगा कि रास्ता यह सही है या वह सही है! फिर यह ईश्वर-पथ का दिग्दर्शन कराकर ही शान्त होता है।

तुलसीदासजी की भक्ति, कबीरदासजी की भक्ति, सृष्टि में प्राप्तिवाले हर महापुरुष की भक्ति, गीता की भक्ति का सिद्धान्त सब एक इकाई है। भजन जागृत है और चलनेवाला पथिक है तो बगैर गीता पढ़े भी गीता का विद्वान है। प्राप्तिवाले हर महापुरुष की वाणी का पूर्ण ज्ञान, वेदों का पारगामी विद्वान क्योंकि ईश्वर-पथ में वही पढ़ाई काम देती है जो भगवान पढ़ाये और आप पढ़े। महाराज कहें– शरीरिया पढ़ी-लिखी नहीं, हो, आत्मवा अंग्रेजीयो जानत है। कोई इंग्लिश में बात करे तो हम बता देंगे कि इसके मनोगत भाव क्या हैं!

इसलिए सभी भक्तों को चाहिए कि सोते-जागते, चलते-फिरते, उठते-बैठते, खुरपी चलाते, जीवन के हर मोड़ पर नाम याद आया करे। श्रद्धा और समर्पण के साथ नाम का स्मरण – यही है नाम का व्यवहार। सुबह-शाम जितना हो सके, उतना समय नियमित दिया करें। बच्चे समय दें, मातायें दें, युवक दें, सब दें। यह नियम खण्डित न हो।

।। ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय।।

सुने री मैंने निर्बल के बल राम

ॐ जय गुरुदेवम् जय गुरुदेव!
ॐ अशरण शरण शरण प्रभु लेव,
ॐ जय गुरुदेवम् जय गुरुदेव!

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा।।
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा।।

(मानस, 7/95/1-2)

बोलो श्रीराम जय राम जय जय राम......
ओम् जय सियाराम जय जय सियाराम......

- - - - - -

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में गोस्वामी तुलसीदासजी ने सम्पूर्ण प्रश्नों का समाधान किया है। अन्त में समाधान करते हुए तुलसीदासजी ने कहा– इस संसार में धर्म क्या है?, और धार्मिक कौन है? तो-

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।

(मानस, 7/126/1-2)

वह धर्मात्मा है। धर्मात्मा ही नहीं, धर्म का विशेषज्ञ है। वह धर्मज्ञ अर्थात् धर्म का मर्मज्ञ है, विशेषज्ञ है, वह गुणी है, ज्ञाता है, वह पण्डित है, दानदाता है। कौन? कि **'राम चरन जा कर मान राता।'**– राम एक परमात्मा के चरणों में जिसका मन अनुरक्त है।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना।।

(मानस, 7/126/3)

वह नीति में निपुण है, परम सयाना है, समाज का सबसे सुलझा हुआ पुरुष है, क्रिया में दक्ष है, क्रिया न जानते हुए भी क्रियावान है, और वेदों

का सिद्धान्त भली प्रकार उसने जाना है। वेद कोई ऐसा सिद्धान्त है, यदि एक राम के चरणों में प्रीति है तो वेद पढ़ने की कोई जरुरत नहीं। वेद जन्मभर पढ़ो, अन्त में निष्कर्ष मिलेगा कि एक परमात्मा की शरण में जाओ। और हम पहले से ही हैं तो वेद की क्या जरुरत है! वेद अपना काम कर चुका।

दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई।।

(मानस, 7/48/8)

वह क्रिया में दक्ष है, सारे लक्षणों से युक्त है। कौन? '**जाकें पद सरोज रति होई।**'– राम एक परमात्मा के चरणों में जिसका अनुराग है।

भगवान शिव ही मानस के निर्माता हैं।

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा।।

(मानस, 1/34/11)

रामचरितमानस भोलेनाथ शिव के हृदय की उपज है। उन भोलेनाथ ने रचा और हृदय में छिपाकर रखा। अशुभ के विपरीत जब शुभ का समय आया तो '**सिवा सन भाषा**'– आपके हृदय में सत्यमयी प्रवृत्ति ही शिवा है। जिस घट में वह जागृत हो गयी वो अधिकारी है। उन प्रत्यक्षदर्शी भोलेनाथ ने स्पष्ट किया कि–

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत।। (मानस, 7/127)

हे पार्वती! वह सारा कुल कृतार्थ है जिस कुल में किसी एक का राम– उन परम प्रभु - के चरणों में अनुराग पैदा हो गया हो। बस इतना ही धर्म है, और किसी भी तरीके से किसी भी देवी-देवता को पूजकर हम कभी धर्मात्मा नहीं हो सकते, न मोक्ष पा सकते हैं। छोटा-मोटा अनुदान तो सभी दे देते हैं। बनिया खुश हो जायेगा छोटी-मोटी दुकान करा देगा, अपनी फैक्टरी तो नहीं दे देगा। मंत्री छोटा-मोटा पद दे देगा, अपनी कुर्सी तो नहीं देगा। यदि शंका हो गयी कि इसकी नीयत हमारी कुर्सी की ओर है तो दर्जनों मुकदमे चला देगा। यह सब झूठ-मूठ का है। कल का परम पवित्र आज सबसे खराब! जब

प्रभु करुणा करते हैं तो अपनी कुर्सी दे देते हैं, अपना धाम देते हैं। उस धाम का पाना ही मुक्ति है।

काकभुशुण्ड को जब प्रभु ने दर्शन दिया, वह विचार में पड़ गये, बोले– मेरे जैसे अधम पर भी प्रभु ने कृपा की? तो भगवान राम ने सांत्वना देते हुए कहा–

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा।।

(मानस, 7/86/1)

एक पिता के कई लड़के। अलग-अलग गुण, शील, स्वभाव, विचारवाले। कोई पण्डित, कोई तापस, कोई ज्ञाता, कोई धनवंत, कोई शूरवीर, कोई दानदाता, कोई धर्मज्ञ.....

कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता।।
कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई।।

(मानस, 7/86/2-3)

पिता की सब पर समान प्रीति है। उनमें एकाध ऐसा भी है, न ज्ञानवान है, न धनवान है, न नीतिवान है; केवल एक गुण– पिता का भक्त।

कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा।।

(मानस, 7/86/4)

कोई मन-क्रम-वचन से पिता का भक्त है, सपने में भी दूसरा धर्म नहीं जानता।

सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना।।

(मानस, 7/86/5)

वह पुत्र पिता को प्राणों के समान प्यारा है। न वह नीतिवान है न गुणवान है, न धनवान है, न शूरवीर है.... कुछ भी कोई गुण नहीं, सब तरीके से निरक्षर, अयोग्य। केवल एक योग्यता– मन-क्रम-वचन से पिता का भक्त है, वह पुत्र पिता को प्राणों के समान प्यारा होता है।

एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते।।

(मानस, 7/86/6)

इस प्रकार चराचर में जितने जीव हैं - चारि खानि के अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, उद्भिज – ये जीव रहते कहाँ हैं? '**त्रिजग**'– तीन लोकों में विभक्त। तीन लोकों के प्रमुख नागरिक कौन? '**त्रिजग देव नर असुर समेते।**'– नीचे के लोक के असुर, मध्य में नर, उन्नत में देवता।

अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया।।

(मानस, 7/86/7)

ये सारा विश्व है। देवता, नर और असुर– ये सब मिलाकर एक विश्व है और मेरा उत्पन्न किया हुआ है, सबके ऊपर मेरी बराबर दया है।

तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया।।

(मानस, 7/86/8)

इनमें से मद-माया का त्याग करके जो मुझे भजता है,

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्बभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।। (मानस, 7/87क)

इन देवता, नर, असुरों में से चराचर में कहीं जन्मा हो, कुछ भी कहलाता हो.... नास्तिक-आस्तिक, यहूदी, ईसाई, मुसलमान पता नहीं कौन-कौन डिग्रियाँ धारण किये हैं! कई हजार तो धर्म हैं दुनिया में। ये कबीलों के नाम हैं, और उसके पीछे लगा दिया 'धर्म'। अरे, 'धर्म' लिख देने से 'धर्म' हो जाता है क्या! चराचर में कहीं जन्मा हो, कुछ भी कहलाता हो, सम्पूर्ण भावों से कपट त्यागकर यदि मुझे भजता है तो वह पुरुष हो, नपुंसक हो, नारी हो, कोई हो, मुझे वो प्राणों के समान प्यारा है, '**मोहि परम प्रिय सोइ**'– परम प्रिय है। कदाचित् मेरा भजन नहीं करता तो-

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई।।

(मानस, 7/85/9)

और भक्ति से हीन है, देवता नहीं, दिति-अदिति की सन्तानें ही नहीं, सृष्टि के रचियता विधाता ही क्यों न हो, वह उतना ही प्यारा है जितने सब जीव। अर्थात् भजन एक परमात्मा का।

मानस के अनुसार देवता जीव श्रेणी में आता है। आखिर यह देव-दावन है क्या? ये विधाता के प्रपंच के दो नाम हैं। **'बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना।'** (मानस, 1/5/4)– विधाता का प्रपंच गुण और दुर्गुणों से सना हुआ है।

दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू॥

(मानस, 1/5/6)

दानव है तो देवता है, ऊँच है तो नीच है, शुभ जीवन अमृत तुल्य जीवन, अशुभ जीवन विष तुल्य जीवन।

सरग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष बिभागा॥

(मानस, 1/5/9)

ये स्वर्ग और ये नरक है, ये अनुराग है, ये वैराग्य है, निगम और आगम जो आनेवाला है, आप्तपुरुषों ने विधाता के प्रपंच के गुण-दोषों का विभाजन किया है। यदि इनमें से हम किसी की पूजा करते हैं तो हमने प्रपंच की पूजा की है न कि भगवान की। भजन एक परमात्मा का।

वनवास का प्रथम दिवस था। लक्ष्मणजी पहरा दे रहे थे, रामजी घास की शय्या पर शयन कर रहे थे। केवट भी अपने कार्यों से निवृत्त होकर धनवी लेकर पहरे में बाजू में बैठ गया। जब प्रभु राम और माता सीता को जमीन पर लेटे देखा तब भक्त का हृदय एकदम करुणा से भर आया, बोले– भैया लक्ष्मण! कैकेयी कुटिल, दुर्बुद्धि, दुष्ट हृदय है, अपने ही फलते-फूलते वंश-वृक्ष पर कुठाराघात किया है। जब ये विभूतियाँ घास पर शयन कर रही हैं तो विधाता ने सुन्दर शय्याओं का निर्माण व्यर्थ ही किया है। कैकेयी दुष्ट है, दुर्बुद्धि है, कुटिल है। तब लक्ष्मण ने कहा– नहीं भैया केवट! माता कैकेयी का तो कोई दोष ही नहीं है। कारण कि सृष्टि का नियम है-

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता।।

(मानस, 2/91/4)

सृष्टि में किसी को दुःख दे सके, सुख दें सके ऐसा कोई जन्मा ही नहीं। '**निज कृत करम भोग सबु भ्राता।**'– अपने कृत कर्मों का ये भोग है, किसी को घास पर सुला रहा है, किसी को सिंहासन पर। इसमें माता कैकेयी का कोई दोष नहीं है।

देवर्षि नारदजी पर जब हरि की माया का प्रकोप हुआ तो विश्वमोहिनी से ब्याह करने लगे, ब्याह में विघ्न आने पर भगवान को ही श्राप देने लगे। नारदजी बोले– समुद्र-मंथन में शंकरजी को जहर पिलाकर लक्ष्मीजी ले गये, और इस विश्वमोहिनी के स्वयंवर में हमें बन्दर का मुँह दे दिया। हम भी आपके टक्कर के प्रत्याशी थे न, इसलिए हमें बन्दर का मुँह देकर विश्वमोहिनी ले गये। आप डाही हो, छलिया हो, कपटी हो, मैं श्राप दूँगा। भगवान बोले– नारदजी! तुम्हारे हृदय में मेरा स्वरूप है, कण्ठ पर मेरा नाम है, कमण्डल है, उसमें गंगाजल है, तुम कभी किसी का अनिष्ट कर ही नहीं सकते। तुम श्राप दो चाहे आशीर्वाद, जिसको दोगे उसका कल्याण ही होगा। '**साधु ते होइ न कारज हानी।**' (मानस, 5/5/4)– संत से कभी किसी के कार्य का अनिष्ट होता ही नहीं। तुम भले ही श्राप दो, कल्याण ही होगा। नारदजी बोले– मैं झाँसे में आनेवाला नहीं हूँ। भगवान बोले– देकर देख लो फिर।

नारदजी बोले– जाओ, मनुष्य की योनि प्राप्त करो, तुम्हारी औरत चोरी चली जाय और तुम भी बुलक-बुलक रोओ जैसे मैं आज रो रहा हूँ। फिर बाबा ही ठहरे दया आ गयी, बोले– बन्दर का जो मेरा मुँह बनाया है, बन्दर आपकी सहायता करेंगे।

भगवान ने कहा– नारदजी! अवतार तो कभी न कभी लेना ही पड़ता है। एक बार हमें सुअर होना पड़ा, मैले में से पृथ्वी निकालनी पड़ी – वाराह अवतार, एक बार शेर हुआ – नृसिंह अवतार, मछली हुआ – मत्स्यावतार, कछुआ बनना पड़ा – कच्छपावतार। कभी न कभी अवतार लेना पड़ता है।

पता नहीं किस अधम योनि में अवतार लेना पड़ता, **'बड़ें भाग मानुष तनु पावा।'** (मानस, 7/42/7)– मुझे मानव तन मिलेगा, मैं भाग्यशाली हूँ। नारद! तुम्हारा पहला आशीर्वाद कि मानव तन मिलेगा। मानव तन भी हमने कई बार प्राप्त किये हैं लेकिन जब कपिल के रूप में था तो कुँवारा, दत्त भगवान के रुप में था तब भी कुँवारा, 'आगे नाथ न पाछे पगहा', भला ब्याह भी होगा, दूसरा आशीर्वाद। और क्या कहा– चोरी चली जायेगी! इसका मतलब कोई बहुत गुणवान, रूपवान होगी। अरे, जो झगड़ालू, बेलन लेकर रोज ही पिटाई करे, उसे कौन गटई बाँधी (पूछे)! भले आदमियों के लिए लोग आँसू बहा ही लिया करते हैं, मैं भी दो आँसू बहा लूँगा। और क्या कहा कि बन्दर सहायता करेंगे। मरकट– मारेंगे और काटेंगे। न तो उनके लिए यूनिफॉर्म बनवाना पड़ेगा कि चलो एक लाख मिलट्री ड्रेस सप्लाई करो ट्रक भरकर... वो भी खत्म। और न भोजन के लिए चूल्हा चेताना पड़ेगा। अब अरबों बन्दर थे, चूल्हा चेताते तो भोजन ही बनाते रह जाते। बन्दर को क्या, ये सब भोजन तैयार है। किसी पेड़ में चढ़ गया, थोड़ी देर में पेटभर गया उसका। और न ही अस्त्र-शस्त्र देना पड़ेगा। उनके अस्त्र-शस्त्र पत्थर हैं, पेड़ हैं, नाखून हैं, दाँत हैं। नारदजी! आपने मेरा भार हल्का कर दिया। अवतार लेकर जो काम मुझे करना था वो आपने कर डाला, नारदजी! मैं धन्य हुआ।

नारदजी ने सोचा– देता हूँ श्राप, हो जाता है आशीर्वाद, बात क्या है? तब नारदजी चरणों में गिर गये– 'पाहिमां शरणागतं'– प्रभो! क्षमा करें। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी, मुझे कुछ नहीं दिखाई दे रहा है, रक्षा करो! रक्षा करो प्रभो! मेरी बुद्धि भ्रष्ट है।

जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी॥

(मानस, 1/137/1)

तब भगवान ने अपनी माया का पर्दा हटा दिया। वह राजकुमारी भी नश्वर और वह लक्ष्मीजी भी नश्वर, आगे सत्य कुछ और। जब उस सत्य पर दृष्टि पड़ी तब नारदजी लगे डुगडुग काँपने, बोले– प्रभो! मैं तो बाल-बाल

बच गया ये तो माया थी, माया ने वेश बना रखा था। **'मृषा होउ मम श्राप कृपाला।'**– मेरा श्राप व्यर्थ हो जाय। भगवान ने कहा– **'मम इच्छा कह दीनदयाला।।'** (मानस, 1/137/3)– मेरी इच्छा थी नारद! तुम पर भयंकर मुसीबत आ गयी थी, हमने सोचा, मैं रक्षा अवश्य करुँगा, तुम्हारी मुसीबत हमने ले लिया, मैं तुम्हारा वचन सत्य करुँगा।

नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ।।

(मानस, 1/186/6)

परम शक्ति समेत अवतार लूँगा। तो केवट भैया! ये अपनी करनी का फल भोग रहे हैं। इन्होंने वचन दिया था, **'नारद बचन सत्य सब करिहउँ।'** ये सत्य कर रहे हैं। लक्ष्मण जानते थे, आगे और आफत आनेवाली है।

यादव लोग बड़ा अच्छा बिरहा गाते हैं कि– **'राम रोवैं लक्ष्मण समझावै हे भैया'**– लक्ष्मण समझा रहा है, हे भैया! **'समझी बूझि दुःख होय'**– जितना समझोगे, जितना विचार करोगे उतना ही दुःख बढ़ेगा। **'अबकै रोवले न बिपतिया ओरइहैं, आगे बिपतिया कछु और'**– अभी तो ये खाली चली गयी है, अबके रोने से विपत्ति नहीं खत्म होगी, आगे ऐसी और भी विपत्ति आयेगी।

आगे जब दूसरीवाली विपत्ति आई तो सीताजी दर्रे में समा गयीं। रामजी ने आदेशों का ताँता लगा दिया– चलो सीते! सिंहासन पर बैठो, अवध सिंहासन की शोभा बढ़ाओ। सीताजी हाथ जोड़कर चली गयी पृथ्वी में। रामजी बिगड़े– मैं पृथ्वी उलट दूँगा, ये कर दूँगा, वो कर दूँगा...। ऋषि बोले– भैया, न साथ कोई जन्मा है न साथ कोई मरा है, ये मृत्युलोक है।

लक्ष्मणजी बता रहे हैं कि भजन किसका करें-

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता।।

(मानस, 2/91/4)

इस संसार में न कोई किसी को सुख दे सकता है, न दुःख। **'निज कृत करम'**– अपने ही किये हुए कर्मों का भोग सब भोगते हैं।

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।।

(मानस, 2/91/5)

योग माने मिलना, वियोग माने बिछुड़ना, हितैषी और अन-हितैषी और मध्यस्थ– ये सब भ्रम के फंदें हैं।

धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू।।

(मानस, 2/91/7)

ये धरनी है, धाम है। अरे राज ही तो छूट गया और क्या छूट गया, धरनी तो हुई। महल छूट गया अर्थात् धाम छूट गया।

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं।।

(मानस, 2/91/8)

ये स्वर्ग है और ये नरक है, इनके विषय में देखना, इनके विषय में सुनना और इनके विषय में गुनना, विचार करना मोह का मूल है, परमार्थ कदापि नहीं। **'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।'**– सारे भवरोग का मूल मोह है, मोह का भी मूल है– स्वर्ग के विषय में कहना, सुनना और विचार करना, परमार्थ कदापि नहीं। तो परमार्थ भला किस दिशा में है?

सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू।।

(मानस, 2/92/6)

हे सखे! परम परमार्थ एक ही दिशा में है– मन-क्रम-बचन से राम - उन परम प्रभु - के चरण-कमलों में प्रीति, प्रेम, श्रद्धा। परम अर्थ, शाश्वत धन को पाने का यही एक उपाय है। तो भजन एक परमात्मा का। लेकिन पूरा भारत जिसको शास्त्र मना कर रहा है उसी का पुजारी है। इस अनर्थ का कारण केवल धर्मशास्त्र के विस्मृत हो जाने का दुष्परिणाम है। आपका धर्मशास्त्र गीता है। चार बार केवल अर्थ पढ़ लोगे तो एकदम सारे प्रश्नों का समाधान हो जायेगा, फिर आपको कोई नहीं भरमा सकेगा, जो आपको छू लेगा वह भी धार्मिक हो जायेगा। ये जो रामायण हम पढ़ रहे हैं, ये गीता का ही विस्तार है।

जब किष्किन्धा में बालि को भगवान राम का बाण लगा, बालि बहुत बिगड़ा– छिपकर आपने बाण मारा, आप तो धर्मात्मा कहला रहे थे, मेरे सामने, दृष्टिपथ में पड़ जाते तो मैं दो घड़ी में मैं तुम्हें धाम भेज देता।

बालि वास्तव में बलशाली था। भगवान श्रीराम ने कहा– सुग्रीव को मैंने आश्वस्त किया है।

मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥

(मानस, 4/8/10)

मेरी भुजाओं के बल के आश्रित है, सुरक्षित है, मारना चाहता है, रे अधम अभिमानी!

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावन करसि न काना॥

(मानस, 4/8/9)

रे मूढ़! तुम्हें बहुत अभिमान है, नारी की सिखावन में काम नहीं करते।

एक बार शकुनी ने कहा– प्रिय दुर्योधन! पितामह जैसा सूरमा इन दोनों सेनाओं में कोई नहीं है। लेकिन ये पाण्डवों को नहीं मारेंगे, पाण्डव इन्हें प्रिय हैं। ऐसा कोई उपाय, षड्यन्त्र रचो जिससे कि वे पाण्डवों को मार डालें। शकुनी बड़ा षड्यन्त्रकारी था, उसने युक्ति बता दिया।

दुर्योधन ने मुँह लटका लिया और पितामह भीष्म के पास बैठ गया। भीष्म बोले– दुर्योधन! तुम्हारे उदास होने का कोई कारण ही नहीं है। मेरे हाथ में जब तक शस्त्र है, तुम्हारी हार नहीं हो सकती। आज नौ दिन हो गये, हर बार तुम्हारी ही विजय होती है। दस हजार महारथियों का वध मैं रोज ही करता हूँ। पाण्डव तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ पाये। तब दुर्योधन बोला– पितामह! आप मेरे पक्ष में युद्ध नहीं कर रहे। जिन दस हजार योद्धाओं का वध आप करते हैं, मैं उनका नाम भी नहीं जानता। कौन है, कहाँ से आया है, ये भी नहीं जानता। फौज में यह कहाँ पता चलता है। पता नहीं उन गरीबों की हत्या क्यों कर रहे हैं। उनमें हमारा शत्रु कोई नहीं है। जिनको आपने मारा, उनमें एक भी मेरा शत्रु नहीं था। आप तो केवल समाज को अपने शूरवीर होने का

परिचय दे रहे हैं। मेरे शत्रु केवल पाँच हैं, इनको मार डालिए अन्यथा धनुष रख दीजिए और सेनापति का पद कर्ण को दे दीजिए।

पितामह बिगड़ खड़े हुए, बोले– नालायक, मैं पूरी शक्ति से युद्ध कर रहा हूँ। मेरे पश्चात् ऐसा पराक्रम कोई नहीं प्रकट करेगा। किन्तु तुम्हें मालूम होना चाहिए, पाण्डव अवध्य हैं। वह नहीं मारे जा सकते, मारे जाओगे तुम लोग। विजय होगी पाण्डवों की, कारण कि वो लोग भगवान श्रीकृष्ण के वरदहस्त के नीचे हैं। वो हर पल प्रभु के वरदहस्त के नीचे हैं। एक पल भी ऐसा खाली नहीं जाता जिसमें मैं उन पाँचों पाण्डवों को वेध दूँ। वे सुरक्षित हैं, अवध्य हैं। खैर, तुमने आज लांछन बहुत लगाया, जाओ, कल संसार में या तो भीष्म जीवित नहीं है या तो अर्जुन। चलो, एक को मारकर देखता हूँ। है अवध्य, लेकिन फिर भी प्रयास करूँगा।

जहाँ भीष्म ने प्रतिज्ञा कर ली, कौरव शिविर में तो खुशी की लहर आ गयी। शकुनी बोला– जिन पितामह के सामने, भगवान ही हैं श्रीकृष्ण, उन्होंने भी शस्त्र उठा लिया। भगवान ने प्रतिज्ञा की थी, शस्त्र नहीं उठाऊँगा, शस्त्र उठा लिया, वो नहीं टिक सके। भीष्म ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं शस्त्र उठवाकर दम लूँगा तो उठवा दिया, सहस्रों नरेशों के मध्य से अम्बा, अम्बालिका को उठा लाये, पिता के हित में प्रतिज्ञा की थी कि मैं अखण्ड बाल ब्रह्मचारी रहूँगा तो रहकर दिखा दिया, गुरु परशुराम अजेय थे सृष्टि में, उनको धूल चटा दिया तो अर्जुन कब तक टिकेगा। और जहाँ अर्जुन मरा, बाकी पाण्डवों में रखा ही क्या है। प्रिय दुर्योधन! खुशी मनाओ, विजय तो हो गयी।

अब कौरव शिविर में तो नगाड़े बजने लगे, और पाण्डव शिविर चिन्तामग्न हो गया कि पितामह को हो क्या गया?, उन्होंने प्रतिज्ञा क्यों कर ली?, हम कब से उनके शत्रु हो गये?

भगवान श्रीकृष्ण सांत्वना देते हुए इस शिविर से उस शिविर विचर रहे थे। आहिस्ते-आहिस्ते लोगों ने कहा– प्रभो! पहले सान्त्वना अर्जुन को दी जाय। उस बेचारे को तो नींद भी नहीं आयी होगी, मौत का भय बहुत खराब

होता है। प्रतिज्ञा तो की है अर्जुन-वध की, इन लोगों के वध की नहीं। श्रीकृष्ण ने कहा– ठीक कहते हो।

जब अर्जुन के शिविर में गये तो अर्जुन खर्राटे मारकर सो रहा था। पहली नींद में जल्दी आँख नहीं खुलती तो ठोक-ठाककर जगाया कि अर्जुन! सो रहे थे? अर्जुन बोला– हाँ प्रभु। सो तो रहा था। श्रीकृष्ण बोले– क्या तुमने भीष्म की प्रतिज्ञा नहीं सुनी? तो अर्जुन बोला– प्रभो! सुनी तो है। श्रीकृष्ण बोले– क्या तुम्हें अपनी मौत का भय नहीं है? अर्जुन बोला– प्रभो! जिसे मेरी मौत का भय है, वह तो जाग ही रहा है, आप स्वयं, मैं भला अपनी नींद हराम क्यों करूँ। फिर, **'बन्दा चेति होय नहीं, हरि चेती तत्काल।'** हमारा किया-धरा कुछ होनेवाला भी तो नहीं है, कर्ता-धर्ता तो आप हैं, मैं भला अपनी नींद क्यों हराम करूँ। उनकी प्रतिज्ञा का प्रश्न आपके क्षेत्र का है भगवन्! हमारा कोई प्रश्न ही नहीं है।

दूसरे दिन भीष्म लगे कहर बरसाने, शाम होते-होते शर-शय्या पर लेट गये, अर्जुन को खरोंच भी नहीं लगी। तो, **'जाके रथ पर केशो, ता कहँ कौन अंदेशो।'**

सूरदासजी ने एक भजन में कहा– हमने सुना है कि,

सुने री मैंने निर्बल के बल राम।
पिछली साख भरूँ संतन की, अड़े सँवारे काम।।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

जब लगि गजबल आपन बरत्यो, नेक सरयो नहीं काम।
निर्बल होइ बल राम पुकारयो, आयो आधो नाम।।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

द्रुपद सुता निर्बल भई भारी, तजि आये निज धाम।
दुसासन की भुजा थकित भई, बसन रुप भये श्याम।।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

अपबल तपबल और बाहुबल, चौथो बल है दाम।
सूर किसोर कृपां ते सब बल, हारे को हरि नाम।।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

सुनो, जो निर्बल होते हैं, उनके बल राम होते हैं।

पिछली साख भरूँ संतन की, अड़े सँवारे काम।।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

पीछे जो बहुत से संत हुए हैं, उनकी मैं साक्षी देता हूँ। उनका काम भली प्रकार अटक गया था, बुरी तरह फँस गया था, उनके अड़े हुए कार्य प्रभु ने सँवार दिए। '**निर्बल के बल राम**'– निर्बल माने जुलाब लेकर शरीर ठठरी कर लो, वह निर्बल नहीं होगा। शरीर-बल, बुद्धि-बल.... पता नहीं कौन-कौन बल लेकर लोग बैठे हैं। जब सब बल हार जाये, भगवान पर निर्भर हो जाये तब निर्बल।

पहला उदाहरण देते हुए कहते हैं– कौन-से भक्त हैं जिनके अड़े काम भगवान ने सँवारा? तो,

जब लगि गजबल आपन बरत्यो, नेक सरयो नहीं काम।
निर्बल होइ बल राम पुकारयो, आयो आधो नाम।।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

सतयुग की घटना है। एक गजराज जंगल में रहता था। पशुओं में एक नियम है, एक उनका मालिक होता है, और बाकी हजारों उसके माथे (अधीन) रहते हैं। वह गजराज उनका सरदार था। यह शुष्क वन था, हरा-भरा नहीं था। जलाशयों में गंदला पानी था। अन्त में उसने विचार किया और सरसब्ज वनप्रान्त की ओर निकल गया।

एक स्वच्छ जलाशय मिला। जलाशय में जहाँ उतरा ही था, मगर ने

पाँव पकड़ लिया। लगाया ताकत तो मगर ही बीस पड़ रहा था। सब हाथी-हथिनियों को आदेश दिया, सूँड़ में सूँड़ बाँधकर, एक दूसरे में पाँव फँसाकर लगे खींचने। हाथियों की कतार लग गयी, गजराज को खींचने लगे, फिर भी टस से मस नहीं हुआ। मगर जमीन से चिपक गया। अन्त में हताश होकर सब हाथी-हथिनियों ने साथ छोड़ दिया। अब गजराज अकेला पड़ गया। वह भी महापराक्रमी था, जी-जान से लड़ा। जब-जब ताकत लगावे तो आधा इन्च गहराई की ओर खिसक जाये। आहिस्ते-आहिस्ते चार इन्च सूँड़ श्वास लेने के लिए रह गयी, तब बल लगाना छोड़ दिया, वहीं बाजू से एक कमल का फूल लिया, भगवान को भेंट करते हुए बोला–'राम'। 'रा' तो निकला मुँह से, अभी 'म' बोलना बाकी था, इतने में सुनवाई हो गयी। भगवान का सुदर्शन-चक्र आया और मगर का गला काट दिया, भगवान भी सामने दिखाई पड़े। तो-

जब लगि गज बल अपनो बरत्यो, नेक सरयो नहिं काम।

जब तक गजराज ने अपना पराक्रम दिखाया, कार्य में जरा-सी भी सफलता दिखाई नहीं पड़ी। और जब निर्बल हो गया, कमल का फूल भेंट करते हुए 'राम' कहा, सहायता माँगी–

निरबल होइ बल राम पुकारयो, आयो आधे नाम।।
सुने री मैंने निरबल के बल राम।

कहीं हाथी को ज्ञान है कि भगवान को फूल चढ़ता है? फूल पा जायेगा तो मुँह में डाल लेगा। यह वैदिककालीन उदाहरण है, साधना-पद्धतियों का चित्रण है। वास्तव में–

मन मतंग माने नहीं जब लगि खता न खाय।
जैसे विधवा नारी को गर्भ रहे पछिताय।।

मन मतवाला हाथी है। यह तब तक नहीं मानता जब तक ठोकर न खा जाये।

मन करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौ एहिं सर परई।।

(मानस, 1/34/8)

मनरूपी मतवाला हाथी विषयानल में झुलसता ही रहता है। सुखी हो जाय जो इस सरोवर में पड़ जाये, मानस सरोवर में, रामचरितमानसरूपी सरोवर में भक्तिरस में यदि डुबकी लगा ले।

मन ही हाथी है। मन के रहने के दो स्थान हैं– विद्या और अविद्या, दैवी सम्पद् और आसुरी सम्पद्। जब आसुरी सम्पद् से यह मन युक्त है तो असुरों जैसा है, उसके व्यवहार में अविद्या का प्रवाह रहता है, गंदला पानी है, अनन्त योनियों का भ्रमण है। गंदला पानी, गंदला खानपान और गंदला वातावरण, शुष्क वन– जहाँ कभी शान्ति का आभास भी नहीं होता, उस जगह रहता है। मन की अनन्त वृत्तियाँ हैं, यही हाथी-हथिनियों का समूह है। यह मन अपनी वृत्तियों के साथ इस जगह में रहता है।

दैवी सम्पद् – जिसमें विद्या का वास है। **'विद्या हि का ब्रह्मगतिप्रदा या।'** (प्रश्नोत्तर मणिरत्नमाला, 11)– विद्या उसे कहते हैं जिसके पास आये, उसको घसीटकर ब्रह्मगति प्रदान कर दे। ब्रह्मगति के अलावा यदि बीच में फिसल गया तो सिद्ध है कि अविद्या कामयाब हो गयी। इसलिए जब उस शुष्क वन को, सारहीन और अशान्तिप्रद वन को त्यागकर सरसब्ज वन में आया। त्याग ही तालाब है। त्याग में जहाँ डुबकी लगाया तो मन ही मतवाला हाथी है, ग्राह ने पकड़ लिया। काल ही ग्राह है। भजन हमने आज शुरु किया तो पूर्तिपर्यन्त रास्ते में कई पटकनी आयेगी। काल ही ग्राह है– **'बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं।'**– वह बिना शरीर का है। और जो भी वहाँ पीने जायेगा, चराचर को ग्रस लेने की क्षमता रखता है। विनयपत्रिका के एक पद में गोस्वामी तुलसीदासजी इसी काल के लिए कहते हैं–

केसव! कहि न जाइ का कहिये। (विनयपत्रिका, 111)

भगवन्! कहते नहीं बन रहा, क्या कहें।

देखत तव रचना विचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिये।

आपकी रचना अति विलक्षण है, मन ही मन समझकर रह जाना पड़ता है।

रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं।।

संसार एक मृगतृष्णा का जल है। रेगिस्तान में ज्येष्ठ के महीने में दोपहर में जब सूर्य की सीधी किरणें पड़ती है तो बालू में एक लहर पैदा हो जाती है। ताप की लहर ऐसे चलती है, लगता है जैसे समुद्र चल रहा हो, नदी बह रही हो। जितने प्राणधारी जीव हैं सब छोटी-छोटी झाड़ियों के बीच में छिपे रहते हैं, सबको मालूम है कि वहाँ आग बरस रही है। मृगा भी उसमें छिपा रहता है। बड़ी आँखवाला मृगा, जब उसकी दृष्टि पड़ी तो उसको भ्रम हो जाता है, अरे पानी.... नदी बह रही है। पहले पीकर प्यास बुझा लूँ, फिर आकर छाया में बैठूँगा। सपाट दौड़ लगाया, और पहुँचा वहाँ तो और भी झुलस गया। भाप वहाँ उठती है जहाँ गर्मी ज्यादा होती है। तब घबराकर दूसरी ओर देखा तो वहाँ भी पानी। वहाँ गया तो और झुलस गया। फिर इधर दौड़ा, उधर दौड़ा। एक घण्टे में पाँव पीटकर गिर पड़ा, मर गया। यह संसार मृगतृष्णा का जल है।

रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।

कालरूपी मगर उसमें निवास करता है। काल का कोई आकार तो होता नहीं, लेकिन मृत्यु अवश्य देता है।

बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं।।

बदन-हीन है, चराचर को ग्रस लेने की क्षमता रखता है, लेकिन उन्हीं को ग्रस पाता है जो पीने जाता है। और विद्या के आश्रित हो गया तो नहीं। किन्तु जब मन भजन में प्रवृत्त होता है, त्यागरूपी तालाब में अवगाहन करता है, जब तक प्राप्ति की अवस्था नहीं आती तब तक काल पीछा करता है। जब तक मन सहस्त्रों, अनन्त वृत्तियों से युक्त होकर लड़ता है, तब तक तो कामयाबी कालरूपी मगर की। वृत्तियाँ शान्त हो गयीं, अकेला लड़ा, तब भी कामयाबी काल की। और जहाँ भगवान के प्रति समर्पण किया, उनके आश्रित हो गया, अपना बल लगाना छोड़ दिया, जिस क्षण उन पर निर्भर हो गया,

भगवान राम का नाम श्वांस से जपते हुए, कमल हाथ में लेते हुए.... कमल निर्मलता का परिचायक है। कमल कीचड़ में रहते हुए भी निर्लेप रहता है। जब तूफानी हवा चलती है, लाखों लहरें ऊपर से निकल जाती है, वह डूब भी जाता है। जहाँ वायु का वेग खत्म हुआ फिर खड़ा हो गया, पंखुड़ी सूखी की सूखी। पंक (कीचड़) में, जल में रहते हुए भी उसकी पंखुड़ी भींगती नहीं। संसाररूपी समुद्र में रहते हुए जहाँ निर्लेप रहने की क्षमता आ गयी, यह कमल निर्मल मन का परिचायक है। जब मन निर्मल, इन्द्रियाँ निर्मल, शुद्ध मन से जहाँ समर्पण किया, अपने आपको उन प्रभु की गोद में फेंक दिया तो–

निरबल होइ बल राम पुकारयो, आयो आधे नाम॥
सुने री मैंने निरबल के बल राम।

यही है निर्बल होना। शरीर सूख जाने से निर्बल नहीं। मन बड़ा खुराफाती है, यह पता नहीं कितना बल लिए बैठा है। वह सब समर्पित हो जाये, अन्तिम समर्पण हुआ, जब वृत्तियाँ हट गयीं, अपनी ताकत लगाना बन्द किया, भगवान के ऊपर अर्जुन की तरह आश्रित हो गया कि भगवन्! जिसे मेरे प्राणों की चिन्ता है वह तो आप स्वयं जाग ही रहे हैं, मेरा किया कुछ होनेवाला भी तो नहीं है; विजय अर्जुन अर्थात् अनुरागी साधक की हुई। और जब निर्बल हुआ तो विजय गजराज की।

आपका, सबका मन एक मतंग– मतवाले हाथी के तुल्य है। जिस दिन सर्वांगीण समर्पण के स्तर पर आ जाओगे, **'आयो आधे नाम'**– फिर वह 'रा' कहा, और 'म' मुँह में रह गया, इतने में सफलता मिल गयी।

भगवान को बैकुण्ठ से भागकर नहीं आना पड़ता। वह तो **'सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।'** (मानस, 2/257) अपनी माया बिखेर देते हैं, प्रभुता फैला देते हैं, और कहीं कुछ नहीं। ऐसा ही हाल द्रौपदी का था-

द्रुपद सुता निर्बल भई भारी, तजि आये निज धाम।
दुसासन की भुजा थकित भई, बसन रुप भये श्याम॥
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

राजसूय यज्ञ के पश्चात् धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को बुलवाया और कहा– युधिष्ठिर! मन बहलाने के लिए चौसर का खेल हो जाये। शकुनि ने नकली पासा चलाया और पाण्डव जुए में हार गये। वे द्रौपदी को भी हार गये।

जब दुःशासन द्वारा द्रौपदी केश पकड़कर घसीटकर लाई गई, तब द्रौपदी ने धृतराष्ट्र से कहा– इस सिंहासन से धर्म भी जुड़ा हुआ है, प्रजा की सुरक्षा का भार जुड़ा हुआ है। आप अन्धे हैं लेकिन मन से तो समझ सकते हैं, मन के अन्धे तो नहीं हैं। आपकी पुत्रवधू का इतना बड़ा अपमान हो रहा है, यह आपका अपमान है। लेकिन अन्धा खुश था। तब द्रौपदी भीष्म के ऊपर बिगड़ी– आपने प्रतिज्ञा की है पितामह कि मैं सिंहासन की रक्षा करुँगा। इस मिट्टी के चबूतरे का नाम सिंहासन नहीं है। कुरुवंश की मर्यादा की रक्षा का नाम ही सिंहासन की रक्षा है, और आप आँख मूँदकर बैठे हैं! भीष्म और भी नीचे देखने लगे।

वह द्रोण से बिगड़ी, भीम से बिगड़ी– धिक्कार है तुम्हारे बाहुबल को भीम, जिस जाँघ को इस दुष्ट ने थपथपाया है, इसी वक्त तोड़ दे। फिर अर्जुन के ऊपर बिगड़ी– उठाओ दिव्यास्त्र, इस पूरी सभा को नष्ट कर दो। जब इज्जत ही नहीं रहेगी तो जीवन से क्या लाभ! जीवन बचा ही कहाँ! मर्यादा का नाम जीवन है। सब भाई युधिष्ठिर का मुँह देखने लगे।

तब फिर पाँच महारथियों की पत्नी थी, दुःशासन से खुद लड़ गयी। खूब लड़ी, चीर खींचने लगी। जब देखा कि अब नहीं बचूँगी तब द्रौपदी को भगवान याद आये। अपनी सुरक्षा करना बन्द कर दिया, दोनों हाथ जोड़ दिए– 'हे कृष्ण, हे गोविन्द, हे मोहन, हे मुरारी' जपने लगी। चीर बढ़ने लगा, लाज भी बच गयी। जब तक अपना बल, पाँच महारथी शूरवीरों का बल, भीष्म जैसे धर्मात्माओं का बल, तब तक तो कुछ सहायता नहीं मिली। जब **'निर्बल भयी भारी'**– अपना भी बल लगाना छोड़ दिया, साड़ी छोड़कर समर्पण किया, अब निर्बल हुई, **'द्रुपद सुता निर्बल भई भारी, तजि आये निज धाम।'**– भगवान अपना धाम त्यागकर चले आये।

दुसासन की भुजा थकित भई, बसन रुप भये श्याम।।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

दुःशासन में दस हजार हाथियों का बल था, उसकी भुजा थकित हो गयी, भगवान वस्त्र के स्वरूप में परिणत हो गये। इस प्रकार द्रौपदी के मर्यादा की रक्षा भगवान श्रीकृष्ण ने की। कब? जब द्रौपदी ने निर्बल होकर भगवान की टेर लगायी।

संसार में चार बल बहुत तगड़े हैं–

अपबल तपबल और बाहुबल, चौथो बल है दाम।
सूर किसोर कृपां ते सब बल, हारे को हरि नाम।।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

'अपबल'– अपना बल, **'तपबल'**– तपस्या का बल, **'बाहुबल'**– इतने हित-मित्र, इतने रिश्तेदार, इतने दोस्त.... इन सबका बल। सिकन्दर कहे– इतनी फौज, चतुरंगिणी सेना, इतने शस्त्र..., यह है बाहुबल। लेकिन-

मुहैया जिसे सारे असबाब, मुल्की औ मालिक थे।
सिकन्दर जब चला दुनिया से तो दोनों हाथ खाली थे।।

सिकन्दर के साथ अंतिम में कुछ भी नहीं गया, न सेनापति काम आये, न ही कोई शस्त्र, न ही हीरे-जवाहरात।

आसपास जोधा खड़े, सभी बजावें गाल।
मंझ महल से ले चला, ऐसा काल कराल।।

काल को रोकने लायक यह पर्याप्त बल है ही नहीं।

अपबल तपबल और बाहुबल, चौथो बल है दाम।

कैसा भी खराब काण्ड कर दो, दो करोड़ रुपया खिसका दो...। पैसे में बड़ा बल है, चाहे तो रातभर में गद्दी बदल दे। पन्द्रह-पचास करोड़ रुपया इधर का उधर फेंका, खट गद्दी बदल जायेगी तो **'चौथो बल है दाम'**। दाम सदैव बल रहा है, सूरदासजी के समय में जरुर रहा होगा, लेकिन

सर्वोपरि बल तो,

सूर किसोर कृपां ते सब बल, हारे को हरि नाम।।
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

'सूर किसोर कृपां ते सब बल'– भगवान का एक नाम '**किसोर**' है। न तो यह भगवान मासूम बच्चा है, न बुड्ढा खप्तुलहवाश कि भूल-भूल जाये। वह सदा किशोर है।

दाढ़ी जामने से पहले जो आयु है उसका नाम किशोरावस्था है। वह सदा किशोर ही रहता है इसलिए भगवान को दाढ़ी नहीं रही। भगवान का यही स्वरूप है – सदा किशोर। त्रेता में भगवान किशोर थे। अब चार बाल पक गये तब तो परिवर्तन आ गया। वह अपरिवर्तनशील, सदा एकरस है। और सीताजी भी 'जुगल किसोर'– दोनों किशोर। इसलिए भगवान का एक नाम किशोर। और सृष्टि में कोई किशोर है ही नहीं। तो– **'सूर किसोर कृपां ते सब बल'**– गज को सारा बल मिल गया जब उनको निर्बल होकर पुकारा। द्रौपदी जब अपना सारा बल हार गयी तो भगवान को पुकारा। किसोर-कृपा भी तब मिलेगी जब हम अपना बल हार जायें– '**हारे को हरि नाम। सुने री मैंने निर्बल के बल राम।'-** इसलिए साधक को सफलता मिलती है तो सर्वांगीण समर्पण से। श्रद्धा और प्रेम के बिना कभी समर्पण होता भी नहीं है।

एक बार दुर्योधन और शकुनि ने षड्यन्त्र रचा, फिर पितामह को उकसा दिया। दुर्योधन बोला– आप पाण्डवों को मारिए। पितामह बोले– पाण्डव अवध्य हैं, पाण्डवों को तो नहीं मारूँगा लेकिन कल युद्ध समाप्त। कल युद्ध करनेवाला कोई योद्धा जीवित नहीं बचेगा। जाओ, अलग से प्रतिज्ञा नहीं, पाण्डव तो अवध्य है लेकिन युद्ध में शस्त्र उठायेंगे तो वह भी मारे जायेंगे। युद्ध करनेवाला, मुकाबला करनेवाला कोई शूरमा नहीं बचेगा।

बड़े सवेरे भीष्म एक ऐसे दिव्यास्त्र का अनुसंधान करने लगे, उसके मुकाबले में जो भी शस्त्र घुमा दे, प्रज्ज्वलित होकर उसको मार डालेगा। जहाँ शस्त्र अनुसंधान करने लगे, कौरव सेना तटस्थ खड़ी मुस्करा रही थी और

पाण्डव लोग निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि इस शस्त्र की काट क्या है। भगवान श्रीकृष्ण ने जब सबका चेहरा लटका हुआ देखा तो बोले– पाण्डवो! सामने यह श्वेत वस्त्र में कौन खड़े हैं? पाण्डव बोले– पूज्य पितामह भीष्म। श्रीकृष्ण बोले– इनसे भी तुम्हारी कोई दुश्मनी है? पाण्डव बोले– कभी नहीं। इनके तो हम लोगों पर बड़े उपकार हैं। बाल्यकाल में समय-समय पर इन्होंने हम लोगों की रक्षा की है। यह तो आदरणीय हैं, पूजनीय हैं। भगवान बोले– फिर आदर करो। पाण्डव बोले– कैसे करें? श्रीकृष्ण बोले– दादा से क्या लड़ना, शस्त्र जमीन पर पटक दो और पीठ दिखा दो। दादा की गोद में लड़के पीठ के बल पड़े रहते हैं, मुँह देखते रहते हैं।

सन्न से पूरी फौज घूम गयी। जहाँ दिव्यास्त्र चला तो पूरी फौज घूम गयी। अब परिक्रमा करके कई अक्षौहिणी सेनाओं का निरीक्षण करके शस्त्र भीम की ओर बढ़ा। श्रीकृष्ण ने कहा– भीम! शस्त्र फेंक दो। वह बोला– भगवन्! यह उपदेश अपने अर्जुन को दीजिए। मैं हूँ शूरवीर। होगा नारायणास्त्र, मैं गदा से तोड़ दूँगा अन्यथा वीरगति पा जाऊँगा। भीम युद्ध में पीठ नहीं दिखायेगा, यह मेरा व्रत है, प्रण है।

भीम लगा गदा भाँजने और वह शस्त्र और प्रज्ज्वलित होने लगा। भीम झुलसने लगा लेकिन माना नहीं। भगवान ने सोचा– यह भोला भक्त है, यहाँ उपदेश नहीं काम करेगा। भगवान रथ से उतरे, दौड़कर गये और भीम को गले से लगा लिया। इधर श्रीकृष्ण की पीठ, उधर भीम की पीठ। नारायण अस्त्र परिक्रमा करके लौट गया, उस दिन कोई मरा ही नहीं। भोले भक्त चाहे भगवान को समर्पण करें चाहे न करें, वह समर्पित ही होता है, लेकिन उतना भोलापन भी होना चाहिए। हर हालत में साधक में श्रद्धा नितान्त आवश्यक है। इष्ट के प्रति श्रद्धा और समर्पण से ही सफलता मिलेगी।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।। (गीता, 4/39)

'प्रेम' शब्द संस्कृत वांग्मय में नहीं है। वहाँ है श्रद्धा, भाव। और हिन्दी

में होता है– प्रेम, विरह, अनुराग। अर्जुन! श्रद्धावान और संयमित इन्द्रिय और उस तत्त्व के प्रति समर्पित पुरुष ही ज्ञान प्राप्त करता है। इस क्षण ज्ञान और दूसरे ही क्षण स्थिति मिल जाती है, एक पल ज्यादा नहीं लगता। कदाचित् हममें श्रद्धा नहीं तब,

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥ (गीता, 17/28)

बिना श्रद्धा का दिया हुआ दान, तपा हुआ तप, जपा हुआ जप सब व्यर्थ चला जाता है, न इस लोक में उसका फल मिलता है और न ही उस लोक में, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। इसलिए श्रद्धा और समर्पण सदैव बने रहने चाहिए। समर्पित भक्त की सारी मनोकामना भगवान पूर्ण करते हैं। वह भक्त भगवान के वरदहस्त के नीचे रहता है। और इस श्रद्धा-समर्पण के लिए भगवान के दो-ढाई अक्षर के नाम ओम्, राम अथवा शिव में से किसी एक नाम का जाप करना चाहिए।

॥ ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ॥

जिन डारे हैं करम सब खोय

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।
नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना।।
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा।।

(मानस, 7/126/1-4)

वेदव्यासजी के शिष्यों ने आषाढ़ पूर्णमासी के दिन, जब सब लेखन क्रिया पूर्ण हो गयी, तब अपने गुरु की पूजा की थी, तब से यह गुरुपूर्णिमा मनाई जा रही है।

अनुसुइया में एक पण्डितजी आये और गुरु महाराजजी से कहा– महाराज! आज से चौथे दिन गुरुपूर्णिमा है। तब महाराजजी ने पूछा– कहो पण्डित! ये गुरुपूर्णिमा का कहावत है? गुरु महाराज को भी नहीं मालूम था। पण्डित बोला– व्यासजी की उनके शिष्यों ने पूजा की थी, जब भागवत वगैरह लिख गयी तब। गुरु महाराजजी बोले– ठीक।

वह तो अड़ंगा लगाकर चले गये, लेकिन महाराज के पास चार-छः शिष्य, साधक थे, उन्होंने जंगल में ढूँढ़कर फूल इकट्ठा किया, माला बनाई, बेलपत्र ले आये, बेलपत्र पर ओम्-ओम्-ओम् लिख दिया और अगरबत्ती जलाकर लेकर गुरु महाराज के पास पहुँचे। महाराजजी बोले– ये का है रे! वे बोले– महाराज! आज गुरुपूर्णिमा है, हम लोग भी गुरु की पूजा करेंगे। तो सिर पर फूल रख दिया, माला पहना दिया, चरण छू लिया, अगरबत्ती घूमा दिया। महाराज बोले– हूँ, अच्छा तो तुम लोग भी चक्कर में पड़ गये, गुरुपूर्णिमा मनावत है। अरे, गुरु जब हृदय में पूर्ण हो जाये उसका नाम गुरुपूर्णिमा है। बाहर ढोंग करे से का होई रे....। पहले तो डाँटे-फटकारे, फिर बोले– ठीक, हलवा बनाओ।

एक किलो शुद्ध घी, एक किलो चीनी, एक किलो आटा – ये जब घोंट-घाट दिया तो उसका नाम हलवा। एक किलो आटा का हलवा करीब सात-आठ किलो बन जाता है, तर माल। छः साधक तो आश्रम में थे ही, और शाम भरे में दो-तीन और आ गये, नौ आदमियों ने गुरुपूर्णिमा मनाई।

दूसरे साल पन्द्रह दिन पहले से ही चेला लोग टुन-टुन करने लगे। महाराजजी बोले– का करत हो रे, का खुसर-फुसर लगा रखी है? वे बोले– महाराज! पन्द्रहवें दिन गुरुपूर्णिमा है। गुरु महाराज बोले– हूँ, सारन के हलवा मुँहे लग गया है।

चना का टिक्कड़, चने की रोटी बनाते नहीं बनती इसलिए तीन पाव चना, एक पाव गेहूँ का आटा मिला दे तो टिक्कड़ (रोटी) बढ़िया बन जाती है। महात्मा लोगों में रोटी को टिक्कड़ कहते हैं, मोटा-मोटा होता भी है। और कभी कैथा की चटनी, दाल, महीने में एकाध बार साग – यह हम लोगों का भोजन रहा। हलवा तो कभी-कभार दो-एक बार। हलवा दुर्लभ चीज थी।

फिर तीसरी बार में साठ आदमी हो गये। गुरु महाराज के समय की अंतिम गुरुपूर्णिमा में छः कुन्तल आटे की पूड़ी बनी, विशाल भण्डारा हो गया, वहाँ जंगल में पत्ते-पत्ते पर आदमी छा गये। वही गुरुपूर्णिमा हम लोगों के पीछे पड़ गयी। हमें तो पता ही नहीं, क्या मनाया जा रहा है, हम तो उलझ गये।

सद्गुरु के अन्दर जो गुरुत्व है वो शिष्यों में परिपूर्ण हो जाये उसके लिए गुरु भी एक स्थिति है।

ब्रह्मवेत्ता वक्ता सुरति गुरु के लक्षण जान।
इच्छा राखे मोक्ष की, ताहि शिष्य पहचान।। (बारहमासी)

ब्रह्म से संयुक्त हो, ब्रह्म के विषय में व्यक्त कर सकते हों, साधक के मन की दृष्टि का नाम सुरत है, मन की दृष्टि पकड़कर चिन्तन में लगा सकते हों, चिन्तन की राह पर ले चलते हों, सुरत पकड़कर, मन को पकड़कर ले

चलते हों, ये गुरु-सुद्गुरु के लक्षण हैं; और केवल मोक्ष की इच्छा रखे ये शिष्य के लक्षण हैं।

शिष्य शिष्य सब कोइ कहे, शिष्य बना ना कोय।
पलटू गुरु की वस्तु को लखे शिष्य सोइ होय।।

गुरु का गुरुत्व हृदय में दिखाई पड़ने लगे, इसके लिए साधक के अंदर लगन होनी चाहिए।

गाँव से दूर जंगल के किनारे एक मन्दिर में लोग आ रहे थे, लोग जा रहे थे, कुछ भीड़-भाड़ दिखाई पड़ी। एक घुड़सवार निकला तो उसने घोड़ा पेड़ से बाँध दिया और चला गया। वहाँ भागवत की कथा हो रही थी। कथावाचक कह रहे थे– जगत मिथ्या है, ईश्वर ही सत्य है, विरहपूरित हृदय से सुमिरन किया जाय तो प्रभु अवश्य दर्शन देते हैं। वह सब जगह हाजिर है, परम कृपालु है, परम दयालु है।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।।

(मानस, 1/184/5)

उस समय वैराग्य प्रकरण ही चल रहा था। विधिवत् उसने सुना और तुरन्त घोड़ा और सब सामान दान कर दिया। पुजारीजी दौड़कर आये, घोड़ा तो पुजारीजी ने ही ले लिया। पुजारीजी पोथी बन्द करके दौड़ लगाये कि कोई और पण्डित न ले ले। वे वैराग्य की कथा सुना रहे थे, 'आपन पाड़े उपदेश दें, अपने घमौना लें' तो घोड़ा तो पण्डितजी ने ही ले लिया। और सामान था, लोगों ने इधर-उधर ले लिया। वह युवक निराधार निकल पड़ा।

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा।।

(मानस, 2/311/5)

इधर-उधर तीर्थों में भ्रमण करते हुए एक अच्छे महापुरुष मिल गये, उनकी शरण में चला गया, भजन की विधि समझी और डूबकर भजन में लग गया।

विचरते हुए बारह वर्ष बाद उस रास्ते से निकला। वह भूल गया था कि मैं इस जगह कभी आया था। संयोग से उसी पेड़ के नीचे बैठ गया। वह पेड़ बारह वर्ष में और भी मोटा हो गया था, नहीं पहचान सका। जो वनप्रान्त था, वह भी काफी घना हो गया था लेकिन मन्दिर था, मन्दिर में लोग वैसे ही आ-जा रहे थे।

उसने पूछा– यहाँ कुछ भीड़-भाड़ है, बात क्या है? मन्दिर तो वैसा ही लग रहा है। लोग बोले– यहाँ कथा हो रही है। उसने पूछा– कब से हो रही है? लोग बोले– यहाँ बीस वर्ष से कथा हो रही है। फिर पूछा– ये श्रोता कब से हैं? लोगों ने सोचा कि कोई महात्मा आये हैं तो भीड़ इकट्ठी हो गयी थी, बोले– ये जो दद्दा है न, ये बीस वर्ष से लगातार सुन रहे हैं, ये दस वर्ष से सुन रहे हैं, ये बारह वर्ष से सुन रहे हैं, ये सात वर्ष से सुन रहे हैं। तब वह युवक बोला– पता नहीं लोग कौन-सी कथा सुनत हैं! हमने तो केवल आधा घण्टा सुना था, अब तक होश नहीं है। ये सार बारह वर्ष से, बीस वर्ष से, सात वर्ष से सुन रहे हैं, पता नहीं कौन कथा सुन रहे हैं।

साधनापरक प्रसंग बहुत थोड़ा होता है और अधिकारी एक पल में पकड़ लेता है। बाकी तेली के बैल की तरह..... तेली का बैल गड़ियार होता है न, कितना भी खोदो, वह चलेगा अपनी ही चाल में। तो-

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय॥

लोग पता नहीं कौन कथा सुनत हैं, हमने तो आधा घण्टा सुना, अब तक होश नहीं है।

गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

(मानस, 1/203/4)

अल्पकाल में सारी विद्या पा गये, और ये पच्चीसों वर्ष से सुन रहे हैं, कुछ पता ही नहीं। अरे, जब घोड़ा दान में मिला तो जो पण्डित कथा पढ़त रहा, वह किताब फेंककर दौड़ पड़ा।

जब से धर्म जीविका हो जाती है, तब से किसी धर्म की जड़ों तक खुदाई हो जाती हैं। ईश्वर को धारण करने का नाम ही धर्माचरण है। इन सारी भ्रान्तियों का निवारण–

भूमि जीव संकुल भये, गये सरद ऋतु पाइ।
सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ।। (मानस, 4/17)

आवश्यकता है सद्गुरु की। तो-

जिन डारे हैं करम सब खोय, भरम दिया धोय।
बलिहारी ऐसे सद्गुरु की।।
सन्तो बिन लोहे घायल हुआ, भला घाव न दीसे कोय।
बलिहारी ऐसे सद्गुरु की।।
सन्तो बाहर घाव न देखिए, भीतर है चकनाचूर।।
बलिहारी ऐसे सद्गुरु की।।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाके धड़ पर शीश नहिं होय।।
बलिहारी ऐसे सद्गुरु की।।
सन्तों कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति करि ना होय।
बलिहारी ऐसे सद्गुरु की।।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, कोई बिरला संत ऐसो होय।।
बलिहारी ऐसे सद्गुरु की।।

- - - - -

जिन डारे हैं करम सब खोय, भरम दिया धोय।
बलिहारी ऐसे सद्गुरु की।।

जिन्होंने कर्म के लेख काट दिए हों, जीव भ्रम में पड़ा है, भ्रम की भली प्रकार धुलाई कर दी हो, फिर आपके स्मृति-पटल में भ्रम कभी जागृत ही नहीं होगा, ऐसे गुरु के ऊपर मैं अपने आपको न्यौछावर करता हूँ। बलिहारी माने सर्वांगीण समर्पण, न्यौछावर होता है, बलि चढ़ाना।

सन्तो बिन लोहे घायल हुआ, भला घाव न दीसे कोय।
बलिहारी ऐसे सद्गुरु की॥

बगैर लोहा के घायल तो– **'सतगुरु मारे उलट निहारे, सोवत में उठ जागे॥'**– जहाँ सद्गुरु की विद्या हृदय से प्रसारित हुई तो संसार की सुध-बुध भूल गयी। मोहनिशा में जो अचेत पड़े हैं, यही सोना है, वे उठ जाते हैं, सदा के लिए जग जाते हैं।

जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥

(मानस, 2/92/4)

इस जीवात्मा को जगा हुआ तब समझना चाहिए, जब समस्त विषयों से वैराग्य हो जाय। वो लोहे से घायल नहीं करते।

मारा बाण कबीर ने, फाट गया ब्रभण्ड।
न्यारा-न्यारा हो गया, तीन लोक नौ खण्ड॥

सद्गुरु का बाण हृदय में लगता है, वह बाण है शब्द का।

शब्दै मारा गिर पड़ा, शब्द छुड़ाया राज।
जिन जिन शब्द विवेकिया, तिनको सरगयो काज॥

शब्द जबान से कहते हैं, इतना ही नहीं। ये तो हल्ला-गुल्ला, शोरगुल होता ही रहता है। भगवान के सीधा प्रसारण का नाम शब्द है।

शब्द हमारा आदि का, पल पल करहू याद।
अन्त फलेगी मोहली, ऊपर की सब बाद॥

शब्द हमारा आदि का है, अनादि तत्त्व परमात्मा है, परमात्मा के श्रीमुख का सीधा प्रसारण है। पल-पल स्मरण रखो, पल-पल याद बनी रहे, कहीं आज्ञा का उल्लंघन न हो जाय। ये शब्द बाहर दुनिया से नहीं होता, हृदय के अन्दर से होता है। मोहली माने भीतरवाली।

अन्त फलेगी मोहली, ऊपर की सब बाद॥

तो सद्गुरु वो शब्द जागृत करते हैं और वह शब्द जागृत हो गया तो सोते-जागते, हर स्वांस पर भगवान रोकथाम करते हुए ले चलते हैं। उसका नाम है शब्द। लोहा तो है नहीं, बाण लग गया–

सन्तो बिन लोहे घायल हुआ, भला घाव न दीसे कोय।

जा रहा था इधर, निकल गया उधर भगवान की ओर। घायल हो गया, बाहर शरीर के ऊपरी भाग में कोई घाव नहीं है।

माता मीरा भी घायल हो गयी थीं-

घायल की गति घायल जाणे, जो कोई घायल होय।
जौहर की गति जौहरी जाणे, कि जिन जौहरी होय।।
मेरा दरद न जाण्या कोय।

जौहरी की गति जौहरी जानता है, घायल की गति घायल जानता है, वास्तव में जो घायल हो जिसे पीड़ा हो। '**मैं दरद दीवानी मेरा दरद न जानै कोय।**' विरह की वेदना जागृत हो जाती है।

सन्तो बाहर घाव न देखिए, भीतर है चकनाचूर।।
बलिहारी ऐसे सद्गुरु की।।

बाहर कोई घाव नहीं, भीतर चकनाचूर। एकदम डूबकर लगने लगा, खप्तुलहवाश। बुद्धि भगवान की ओर, मन भगवान की ओर, वृत्ति भगवान की ओर। सकलेन्द्रिय संयमित। चित्त चिंता करता था, चिंतन करने लगा।

लोग कहें मीरा भई बावरी, सास कहे कुलनाशी।

आज उस कुलवन्ती सास को कोई नहीं जानता, मीरा की वजह से आज सासजी का भी आदर हो रहा है। सद्गुरु की चोट भीतर लगती है, अन्तःकरण में, मन में, बुद्धि में, विचारों में लगती है। '**भीतर है चकनाचूर**'– संतो! यह है भगवान की भक्ति। मन उधर से घूमकर चकनाचूर हो गया, फिर भगवान में लग गया। इसका नाम है हरि की भक्ति। विभक्ति माने विभाजन, टूट जाना, बिखर जाना; भक्ति माने भगवान से जुड़ना।

भक्ति करे कोई सूरमा, जाके धड़ पर शीश नहिं होय।।
बलिहारी ऐसे सद्गुरु की।।

आगि आँच सहना सुगम, सुगम खड्ग की धार।

आग में कूद जाना आसान है, खड्ग (तलवार) की नोंक पर जूझ जाना आसान है।

नेह निबाहन एक रस, महाकठिन व्यवहार।।

भगवान के चरणों में एकरस स्नेह का निर्वाह कर लेना बहुत कठिन व्यवहार है जिसका नाम भक्ति है।

भक्ति करे कोई सूरमा, जाके धड़ पर शीश नहिं होय।।

कोई सूरमा ही कर पाता है, गुरु महाराज जैसा कहें वैसा ही उसमें ढल जाता है। साधक की बुद्धि मात्र यन्त्र है, भगवान जो कह दें उतने को धारण कर लेती है। अपने से सोचना, विचारना, निर्णय लेना... वो मस्तिष्कवाला है। इसके धड़ पर शीश है ही नहीं। इतना समर्पण कर दिया कि शीश है ही नहीं, मस्तिष्क है ही नहीं।

तुलसी मन तो एक है, भावै जहाँ लगाय।
भावै हरि की भक्ति कर, भावै विषय कमाय।।

ये मन जब भेंट कर दिया तो हमने मस्तिष्क भेंट कर दिया, शीश ही भेंट कर दिया। **'भक्ति करे कोई सूरमा'**। सूरमा के लक्षण क्या? **'जाके धड़ पर शीश नहिं होय।'**– सोचने, विचारने, निर्णय लेनेवाला शीश है ही नहीं। वह भगवान को भेंट कर दिया, भगवान सोचे-विचारें, उठावें-बैठावें, ले चलें। छोटा बच्चा सोचता है क्या कि सर्प आ रहा है, हमें काट लेगा! बल्कि सर्प उधर से आ रहा है और ये इधर से पकड़ने जा रहा है, जिसको गरज हो, उठाकर अलग करे।

गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई।।

(मानस, 3/42/6)

छोटा शिशु चमक देखकर अग्नि को पकड़ने दौड़ता कि खिलौना है, सर्प को चलता हुआ देखकर पकड़ने दौड़ता है अरे खिलौना, वह भले काट ले, भले ही जल जाय। **'तहँ राखइ जननी अरगाई।'**– माता मना ही नहीं करती बल्कि उठाकर अलग कर लेती है। ऐसे ही मैं अपने भक्त की रक्षा करता हूँ जो सर्वांगीण मुझ पर निर्भर हो जाता है।

मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥

(मानस, 3/42/8)

अमानी दास मुझे बालक, सुत के समान होते हैं जो अपना सिर भेंट कर देते हैं। 'अमान'– मान-सम्मान समर्पित कर देते हैं।

भक्ति करे कोई सूरमा, जाके धड़ पर शीश नहिं होय॥

इतना समर्पण कर दिया कि शीश है ही नहीं, मस्तिष्क है ही नहीं, बस केवल आज्ञापालन की स्थिति में आ गया, वही सूरमा है।

गुरु की आज्ञा उलंघि के, जो नर काहू जाय।
जहाँ जाय तहाँ काल है, कहे कबीर बिचार॥

सद्गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करके जहाँ भी चला जाता है, वह अपनी समझ से बिल्कुल सुरक्षित जगह में जा रहा है, लेकिन वह सीधा काल के मुँह में जा रहा है।

गुरु की आज्ञा आवहीं, गुरु की आज्ञा जाय।
कहे कबीर वे संत हैं, आवागमन नसाय॥

सन्तों कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति नहिं होय।

कई कामनाओं, इच्छाओं का अम्बार लगा है। कामी माने कामना होता है। इच्छायें अनन्त होती हैं, समुद्र से भी ज्यादा बड़ी होती हैं, त्रैलोक जीत लिया तब भी कुछ बाकी। रावण त्रैलोक विजेता था, लेकिन कल राम का वध करुँगा, परसों सीताजी से विवाह करुँगा, और बीच में ही मर गया। आज तक सृष्टि में कोई जीव जन्मा ही नहीं जो सारी इच्छा पूरी करके मरा हो।

सृष्टि में इच्छाओं का कोई अन्त ही नहीं। आगे कुछ और दिखाई पड़ेगा तो उसकी इच्छा होगी। कामना में विघ्न पड़ा तो क्रोध, और फिर लालच कि और चाहिए, और चाहिए।

सन्तों कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति करि ना होय।
बलिहारी ऐसे सद्गुरु की॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, कोई बिरला संत ऐसो होय॥

बिरले ही ऐसे संत होते हैं, शीश देकर यन्त्र बनकर चलनेवाले।

एक अच्छे महापुरुष के पास एक युवक साधु बनने आया, बोला– भगवन्! मैं दुनिया में सब कुछ कर चुका हूँ, आप मुझे साधु बना लें, शरण में रख लें, मैं सेवा करुँगा, भजन करुँगा, आज्ञापालन करुँगा। महात्मा बोले– ठीक, तुम बहुत अच्छे हो! ऐसा करो, गंगा-स्नान करके आओ। सामने ही गंगा थी तो वह गंगा-स्नान करने गया।

आश्रम में एक भंगिन झाड़ू लगा रही थी। वह भी सेवक ही थी, झाड़ू लगा दिया करे। महाराज ने उससे कहा– देख बेटा! एक नवाड़ी आया है साधु बनने, तुम हवा का रुख देखकर इस ढंग से झाड़ू लगाओ कि गर्दा सीधा उसके ऊपर गिरा करे। और भाग जाना, बहुत मारेगा, पत्थर वगैरह से बचकर रहना। वह बोली– जैसी आज्ञा गुरु महाराज!

हवा यूँ चल रही थी तो इधर झाड़ू लगाना, गर्दा उड़ाना शुरु किया। जहाँ गर्दा उसके ऊपर गिरा तो बोला– धत् चुड़ैल कहीं की! बदतमीज!! नीचों के मारे रास्ता चलना मुश्किल हो गया है। और दो-चार-छः पत्थर उठाकर खींच-खींचकर फेंका। वह तो सधी-सधाई रही, दाहिने-बाँयें बचकर भाग गयी। फिर बड़बड़ाता हुआ गया, नहाया। नहाकर आया, प्रणाम किया तो गुरु महाराज ने कहा– हूँ, तू है तो बहुत अच्छा, शरीर अच्छा है, तपाक अच्छा है, तू साधु बनाने के लायक तो है लेकिन भौंकता भी है, काटता भी है। जाओ, इस नाम का जाप करो, एक वर्ष बाद आना। एक वर्ष तक निरन्तर जाप करना, फिर आओ।

वह बेचारा चला गया लेकिन टेक का पक्का था, वर्षभर बाद फिर आया। तब गुरु महाराज ने भंगिन से कहा– देख बिटिया! वह फिर आया है साधु बनने। अब गर्दे से नहीं भागेगा, कुछ मजबूत हो गया है। तुम इस ढंग से झाड़ू लागाओ कि उसके पाँव में दो-चार सींकें छू जाय। महात्मा बोले– देख, डरना मत, पत्थर नहीं मारेगा, गाली-वाली खूब देगा।

जब वह आया तो महाराज बोले– जाओ गंगा-स्नान करके आओ। जब गंगा-स्नान करके लौट रहा था तो वह भंगिन सर्र-सर्र झाड़ू लगा रही थी। वह बेचारा बहुत बचा-बहुत बचा लेकिन झाड़ू की सींक छुआ ही तो दिया। तब बोला– धत् चुड़ैल कहीं की, बदतमीज... इन नीचों की वजह से भले आदमी का यहाँ आना-जाना मुश्किल हो गया है। इतने पवित्र आश्रम में इन नीचों को पता नहीं कैसे प्रवेश मिल गया! मैं गुरुजी को कहकर इनका आना-जाना बन्द करवा दूँगा, ये करुँगा, वो करुँगा.....। बड़बड़ाया बड़ी जोर से लेकिन पत्थर नहीं फेंका।

फिर गया, नहाकर आया, तब महाराज बोले– हूँ, काटता तो नहीं है, भौंकता बहुत है। उसी नाम का जाप करो बेटा! एक वर्ष तक लगातार रात-दिन जाप करो और एक वर्ष बाद आना।

वह चला गया। वह समझ नहीं पाया बबाल क्या है?, क्या गलती हो जा रही है? लेकिन टेक का पक्का था, एक वर्ष बाद जब आया तो महाराज फिर भंगिन से बोले– बेटा! वह फिर आया है। ऐसा कर, टोकरी में गन्दी चीज न रहे, पत्ती-वत्ती भर ले, जब इधर सीढ़ियाँ चढ़ने लगे तो अनचित्ते में उसके सिर पर फेंक दे। अब वह झाड़ू छूने से नाराज न होई।

भंगिन ने बस आदेश का पालन किया। जहाँ सीढ़ी चढ़ने लगा तो टोकरी भरकर पत्ती उसके सिर पर डाल दिया। तब वह हाथ जोड़कर बैठ गया, बोला– माताजी! आप ही की वजह से तीन साल हो गया धक्का खाते, हमसे बड़ी भूल हुई, हमें क्षमा करना, हम समझ नहीं पाये। उस समय हम अपने आवेश में थे, अपने गौरव में थे, दुबारा भी हमें गर्व था, अब हमें कोई

गर्व नहीं। चमड़ी का शरीर है, मिट्टी का ही तो था, चार पत्ती गिर गयी तो कोई बात नहीं, हमसे बड़ी भूल हुई, क्षमा करना।

वह गया, नहाकर आया, प्रणाम किया तब महाराज बोले– हूँ, अब तू भजन करने लायक तो हो गया है, अब ठीक है। बस रख लिया।

तो 'मैं फलाना हूँ, मैं इस जाति का हूँ, मैं ज्ञानी हूँ....'–ये बहुत देर में जाता है।

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।।

(मानस, 3/34/5)

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं।।

(मानस, 2/129/5)

कबीर सोई कुल भला, जा कुल हरि को दास।
जेहिं कुल दास न उपजे, सो कुल ढाक पलास।।

वही कुल सर्वोपरि है जिस कुल में हरि का दास उत्पन्न हो जाय। जिस कुल में हरि का दास ही नहीं जन्मा तो वह कुल ढाक है, पलास है। ढाक और पलास एक ही पेड़ का नाम है, गर्मियों में लाल-लाल फूल फूलता है, न चिड़िया खाती हैं, न पशु खाते हैं। और फूल जमीन पर गिर जाता है तब भी किसी काम का नहीं। उसकी लकड़ी जल्दी जलती भी नहीं।

इसलिए साधक को चाहिए कि मन-क्रम-वचन से सम्पूर्ण समर्पण के साथ सद्गुरुदेव भगवान के चरणों में समर्पित हो जाय तभी उसके पूर्वकृत सारे कर्म-संस्कार समाप्त हो जायेंगे। जीव में भ्रम रहता है, वह भ्रम भी खत्म हो जायेगा, और एक दिन गुरुदेव भगवान की कृपा से वह अपने स्वरूप तक की दूरी तय कर लेगा।

।। ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय ।।

जियरा तुम जइहो हम जानी

ॐ जय गुरुदेवम् जय गुरुदेव!
ॐ अशरण शरण शरण प्रभु लेव,
ॐ जय गुरुदेवम् जय गुरुदेव!

राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।।

(मानस, 1/165/6)

गुर कें बचन प्रतीति न जेहीं। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।।

(मानस, 1/79/8)

संतों ने निर्णय दिया कि अरे जीव! एक न एक दिन तो सबको इस संसार से जाना ही होगा।

मुहैया जिन्हें सारे असबाब, मुलकी औ माली थे।
सिकन्दर जब चला दुनिया से, दोनों हाथ खाली थे।।

सिकन्दर को सारे ऐश्वर्य की सामग्री उपलब्ध थी, दुनिया के मालिकों के मुकुट उसके सामने थे लेकिन जब दुनिया से चला तो **'दोनों हाथ खाली थे'**– बत्तीस वर्ष कुछ महीने की उम्र में चल बसा।

संत कबीरदासजी ने कहा कि यह सारा संसार ही मुर्दों का गाँव है– **'संतो यह मुर्दों का गाँव'**। और जिन्दा आदमी भी मुर्दा होता है.... अंगद ने रावण को डाँटकर कहा–

तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ।
तव जुबतिन्ह समेत सठ जनकसुतहि लै जाउँ।। (मानस, 6/30)

जौ अस करौं तदपि न बड़ाई। मुएहि बधें नहिं कछु मनुसाई।।

(मानस, 6/30/1)

अरे रावण! मरे हुए को मारने में कौन बड़ाई है, क्योंकि–

कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा॥

(मानस, 6/30/2)

वाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यन्त मूढ़, अति दरिद्र, बदनाम, अत्यन्त बूढ़ा,

सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥

(मानस, 6/30/3)

नित्य का रोगी, निरन्तर क्रोधी, भगवान से विमुख, वेद और संतों का विरोधी,

तनु पोषक निंदक अघ खानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥

(मानस, 6/30/4)

अपना ही पोषण करनेवाला, निंदक और पापी – जीते जी शव के समान, लाश के समान ये चौदहों प्राणी हैं। जिन्दे अवश्य हैं लेकिन लाश के समान हैं।

संत कबीर ने बताया कि शरीर पानी का बुलबुला है।

पानी केरा बुदबुदा, मानुष धरिया नाउँ।
चार दिनों का पाहुना, बड़ी बड़ी रुँधे ठाउँ॥

संत कबीरदासजी अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कितना भी वज्र किंवाड़ लगाओ, बीस-बीस फीट चौड़ी दीवारों का दुर्ग बनाओ, चतुरंगिणी सेना का पहरा लगाओ, लेकिन जायेंगे जरुर। भगवान के भजन के सिवाय बचने का अन्य कोई उपाय नहीं है।

जियरा तुम जइहो हम जानी॥
राज करन ते राजा जइहैं, रूप करन ते रानी।
चाँद भी जइहैं, सूरज भी जइहैं, जइहैं पवन औ पानी॥
जियरा तुम जइहो हम जानी॥

मानव जन्म अहै अति दुर्लभ, तुम समझो अभिमानी।
लोभ लहर की नदी बहत है, बूड़ोगे बिन पानी।।
जियरा तुम जइहो हम जानी।।

जोगी जइहैं, जंगम जइहैं, जइहैं मुनि बड़ ज्ञानी।
कहैं कबीर एक संत न जइहैं, जाकी चित ठहरानी।।

जियरा तुम जइहो हम जानी।।

रे जियरा! रे जीव! तुम जाओगे, हमने जान लिया।

राज करन ते राजा जइहैं, रूप करन ते रानी।

न ही कोई राजा बचा और न ही कोई स्टेट, न उनके राज्य। किसी का पता नहीं रह गया। अच्छा, रानियाँ दिनभर रूप ही सजाती रहीं लेकिन बच नहीं पायीं।

चाँद भी जइहैं, सूरज भी जइहैं, जइहैं पवन औ पानी।।

सृष्टि में कोई ऐसी चीज नहीं है जो अजर-अमर हो। सब परिवर्तनशील है। लेकिन मनुष्य तन दुर्लभ है इसलिए भगवान कहते हैं– मेरा भजन करो।

जियरा तुम जइहो हम जानी।।

तुम अवश्य जाओगे, अब हमने जान लिया। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं– अर्जुन! साधक को चाहिए कि पूर्ण समर्पण के साथ किसी अनुभवी महापुरुष की शरण ले। पुण्य-पुरुषार्थ सबल होते ही कुतर्कों का शमन और यथार्थ क्रिया में प्रवेश मिल जायेगा। योगेश्वर श्रीकृष्ण के अनुसार इस प्रकार 'ॐ' के जप और परमात्मस्वरूप सद्गुरु के स्वरूप का निरन्तर स्मरण करने से मन का निरोध और विलय हो जाता है और उसी क्षण शरीर के सम्बन्ध का त्याग हो जाता है। केवल मरने से शरीर पीछा नहीं छोड़ता।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।। (गीता, 8/14)

मेरे अतिरिक्त और कोई चित्त में है ही नहीं। अन्य किसी का चिन्तन न करता हुआ अर्थात् अनन्य चित्त से स्थिर हुआ जो अनवरत मेरा स्मरण करता है, उस नित्य मुझमें युक्त योगी के लिए मैं सुलभ हूँ।

आपके सुलभ होने से क्या मिलेगा?–

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥ (गीता, 8/15)

मुझे प्राप्त कर वे दुःखों के स्थानस्वरूप क्षणभंगुर पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते, बल्कि परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं अर्थात् मुझे प्राप्त होना अथवा परम सिद्धि को प्राप्त होना एक ही बात है। केवल भगवान ही ऐसे हैं, जिन्हें पाकर उस पुरुष का पुनर्जन्म नहीं होता। फिर पुनर्जन्म की सीमा कहाँ तक है?

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥ (गीता, 8/16)

अर्जुन! ब्रह्मा से लेकर कीट-पतंगादि सभी लोक पुनरावर्ती हैं, जन्म लेने और मरने तथा पुनः-पुनः इसी क्रम में चलनेवाले हैं; किन्तु कौन्तेय! मुझे प्राप्त होकर उस पुरुष का पुनर्जन्म नहीं होता। धर्मग्रन्थों में लोक-लोकान्तरों की परिकल्पना ईश्वर-पथ की विभूतियों का बोध कराने के आन्तरिक अनुभव या रूपक मात्र हैं। अन्तरिक्ष में न तो कोई ऐसा गड्ढा है जहाँ कीड़े काटते हों और न ऐसा महल जिसे स्वर्ग कहा जाता हो। दैवी सम्पद् से युक्त पुरुष देवता और आसुरी सम्पद् से युक्त मनुष्य ही असुर हैं। श्रीकृष्ण के ही सगे-सम्बन्धी कंस राक्षस और बाणासुर दैत्य थे। देव, मानव, तिर्यक योनियाँ ही विभिन्न लोक हैं। श्रीकृष्ण के अनुसार यह जीवात्मा मन और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को लेकर जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों के अनुरूप नया शरीर धारण कर लेता है।

अमर कहे जानेवाले देवता भी मरणधर्मा हैं– **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'** (गीता, 9/21)। इससे बड़ी क्षति क्या होगी? वह देव-तन ही किस काम का जिसमें संचित पुण्य भी समाप्त हो जाय? देवलोक, पशुलोक, कीट-पतंगादि लोक भोगलोक मात्र हैं। केवल मनुष्य ही कर्मों का रचयिता है

जिसके द्वारा वह उस परम धाम तक को प्राप्त कर सकता है जहाँ से पुनरावर्तन नहीं होता। यथार्थ कर्म का आचरण करके मनुष्य देवता बन जाय, ब्रह्मा की स्थिति प्राप्त कर ले किन्तु वह पुनर्जन्म से तब तक नहीं बच सकता जब तक कि मन के निरोध और विलय के साथ परमात्मा का साक्षात्कार करके उसी परम भाव में स्थित न हो जाय। उदाहरणार्थ उपनिषदें भी इस सत्य का उद्घाटन करती हैं–

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥

(बृहदारण्यकोपनिषद्, 4/4/7; कठोपनिषद्, 2/3/14)

जब हृदय में स्थित सम्पूर्ण कामनाएँ समूल नष्ट हो जाती हैं तब मरणधर्मा मनुष्य अमर हो जाता है और यहीं, इसी संसार में, इसी मनुष्य-शरीर में परब्रह्म का भली-भाँति साक्षात् अनुभव कर लेता है।

प्रश्न उठता है कि क्या ब्रह्मा भी मरणधर्मा है? गीता अध्याय तीन में तो योगेश्वर श्रीकृष्ण ने प्रजापति ब्रह्मा के प्रसंग में कहा कि प्राप्ति के पश्चात् बुद्धि मात्र यन्त्र है, उसके द्वारा परमात्मा ही व्यक्त होता है। ऐसे महापुरुषों के द्वारा ही यज्ञ की संरचना हुई है और यहाँ कहते हैं कि ब्रह्मा की स्थिति प्राप्त करनेवाला भी पुनरावर्ती है। योगेश्वर श्रीकृष्ण कहना क्या चाहते हैं?

वस्तुतः जिन महापुरुषों के द्वारा परमात्मा ही व्यक्त होता है, उन महापुरुषों की बुद्धि भी ब्रह्मा नहीं है; लेकिन लोगों को उपदेश देने के कारण, कल्याण का सूत्रपात करने के कारण ब्रह्मा कहे जाते हैं। स्वयं में वे ब्रह्मा भी नहीं हैं। उनके पास अपनी बुद्धि रह ही नहीं जाती किन्तु इसके पूर्व साधनाकाल में बुद्धि ही ब्रह्मा है– **'अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।'** (मानस, 6/15क) साधारण मनुष्य की बुद्धि ब्रह्मा नहीं है। बुद्धि जब इष्ट में प्रवेश करने लगती है तभी से ब्रह्मा की रचना होने लगती है, जिसके चार सोपान मनीषियों ने कहे हैं। पीछे अध्याय तीन में बता आये हैं, स्मरण के लिए पुनः देख सकते हैं– ब्रह्मविद्, ब्रह्मविद्वर, ब्रह्मविद्वरीयान्, ब्रह्मविद्वरिष्ठ।

ब्रह्मविद् वह बुद्धि है, जो ब्रह्मविद्या से संयुक्त हो। ब्रह्मविद्वर वह है, जिसे ब्रह्मविद्या में श्रेष्ठता प्राप्त हो। ब्रह्मविद्वरीयान् वह बुद्धि है जिससे वह ब्रह्मविद्या में दक्ष ही नहीं वरन् उसका नियन्त्रक, संचालक बन जाता है। ब्रह्मविद्वरिष्ठ बुद्धि का वह अन्तिम छोर है जिसमें इष्ट प्रवाहित है। यहाँ तक बुद्धि का अस्तित्व है; क्योंकि प्रवाहित होनेवाला इष्ट अभी कहीं अलग है और ग्रहणकर्त्ता बुद्धि अलग है। अभी वह प्रकृति की सीमा में है। अब स्वयं प्रकाशस्वरूप में जब बुद्धि (ब्रह्मा) रहती है, जागृत है तो सम्पूर्ण भूत (चिन्तन का प्रवाह) जागृत हैं और जब अविद्या में रहती है तो अचेत हैं। इसी को प्रकाश और अन्धकार, रात्रि और दिन कहकर सम्बोधित किया जाता है। देखें–

ब्रह्मा अर्थात् ब्रह्मविद्वेत्ता की वह श्रेणी, जिसमें इष्ट प्रवाहित है, उसको प्राप्त सर्वोत्कृष्ट बुद्धि में भी विद्या (जो स्वयं प्रकाशस्वरूप है, उसमें मिलाती है) का दिन और अविद्या की रात्रि, प्रकाश और अन्धकार का क्रम लगा रहता है, यहाँ तक साधक में माया कामयाब होती है। प्रकाशकाल में अचेत भूत सचेत हो जाते हैं, उन्हें लक्ष्य दिखायी पड़ने लगता है तथा बुद्धि के अन्तराल में अविद्या की रात्रि के प्रवेशकाल में सभी भूत अचेत हो जाते हैं। बुद्धि निश्चय नहीं कर पाती। स्वरूप की ओर बढ़ना बन्द हो जाता है। यही ब्रह्मा का दिन और यही ब्रह्मा की रात्रि है। दिन के प्रकाश में बुद्धि की सहस्रों प्रवृत्तियों में ईश्वरीय प्रकाश छा जाता है और अविद्या की रात्रि में इन्हीं सहस्र परतों में अचेतावस्था का अन्धकार आ जाता है।

शुभ और अशुभ, विद्या और अविद्या– इन दोनों प्रवृत्तियों के सर्वथा शान्त होने पर अर्थात् अचेत और सचेत, रात्रि में विलीन और दिन में उत्पन्न दोनों प्रकार के भूतों (संकल्प प्रवाह) के मिट जाने पर उस अव्यक्त बुद्धि से भी अति परे शाश्वत अव्यक्त भाव मिलता है जो फिर कभी नष्ट नहीं होता। भूतों की अचेत और सचेत दोनों स्थितियों के मिटने पर ही वह सनातन भाव मिलता है।

बुद्धि की उपर्युक्त चार अवस्थाओं के बादवाला पुरुष ही महापुरुष है।

उसके अन्तराल में बुद्धि नहीं है, बुद्धि परमात्मा का यन्त्र-जैसी हो गयी है किन्तु लोगों को वह उपदेश करता है, निश्चय से प्रेरणा देता है अतः उसमें बुद्धि प्रतीत होती है; किन्तु वह बुद्धि के स्तर से परे है। वह परम अव्यक्त भाव में स्थित है, उसका पुनर्जन्म नहीं होना है; किन्तु इस अव्यक्त स्थिति से पूर्व जब तक उसके पास अपनी बुद्धि है, जब तक वह ब्रह्मा है वह पुनर्जन्म की परिधि में ही है।

मानव जन्म अहै अति दुर्लभ, तुम समझो अभिमानी।
लोभ लहर की नदी बहत है, बूड़ोगे बिन पानी।।
जियरा तुम जइहो हम जानी।।

मानुष जन्म बहुत दुर्लभ है। **'तुम समझो अभिमानी।'-** हम समझना चाहते हैं लेकिन अभिमान हमें समझने नहीं देता। समझने में रुकावट है लोभ। लोभ लहर की एक नदी बह रही है। उसमें पानी भी नहीं है और डुबा देती है– **'बूड़ोगे बिनु पानी। जियरा तुम जइहो हम जानी।।'**

जोगी जइहैं, जंगम जइहैं, जइहैं मुनि बड़ ज्ञानी।
कहैं कबीर एक संत न जइहैं, जाकी चित ठहरानी।।
जियरा तुम जइहो हम जानी।।

जोगी, जंगम, बड़े-बड़े ज्ञानी भी रसातल में चले गये। लेकिन एक संत बिल्कुल नहीं जायेंगे, वह स्थिर रहेंगे जिनकी बुद्धि स्थिर हो गयी है। संत कबीरदासजी कहते हैं– **'संत'**– जिनके संशयों का अन्त हो चुका है। और अभ्यास की चरमोत्कृष्ट अवस्था होती है– चित्त का स्थिरीकरण। अभ्यास इतना उन्नत हो गया जहाँ चित्त को लगाया गया नाम में, चरणों के ध्यान में, लक्ष्यमात्र का आभास है, जैसे शीशे में अपना मुँह दिखाई देता है वैसे ही हृदय में चरण दिखाई पड़ें, अन्य कोई आभास न रह जाए, चित्त का निज स्वरूप भी शान्त हो जाय, इसका नाम है– ध्यान। प्रकृति से सम्बन्ध टूट गया और परमात्मा से भली प्रकार सम्बन्ध जुड़ गया, इसका नाम है– **'चित्त ठहरानी'**, तो भगवान जो हैं, जिन विभूतियों से युक्त हैं वो अपना परिचय

खुद ही दे देते हैं और भक्त को अपने में समाहित कर लेते हैं। अन्यथा भगवान को हम चमड़ी की आँखों से देख ही नहीं सकते, वो स्वयं ही अर्जुन की तरह आपमें दृष्टि बनकर खड़े हो जाते हैं तभी वो समझ में आते हैं। उन्हीं का नाम संत हैं जिनका चित्त स्वरूप में, ध्यान में स्थायी, स्थिर हो गया है। भगवान के तद्रूप जिनका चित्त स्थिर हुआ, खड़ा हुआ वो नहीं जायेंगे, वो भगवान के स्वरूप में दर्शन, स्पर्श और प्रवेश की स्थितिवाले हो गये।

'कहैं कबीर एक संत न जइहैं'– जिनके संशयों का अन्त हो गया हो.... **'संशयात्मा विनश्यति'** (गीता, 4/40)– संशयात्मा का विनाश हो जाता है। पहले तो संशयों का अन्त हो। संशय का अन्त हुए बिना हम साधना भी तो हम नहीं कर पायेंगे। संशयात्मा का विनाश हो जाता है। साधना की चरमोत्कृष्ट अवस्था होती है– चित्त का स्थिर होना।

संत न जइहैं, जाकी चित ठहरानी।।
जियरा तुम जइहो हम जानी।।

और कहो, ढेर धन इकट्ठा हो गया तो बच जायेंगे! कुछ नहीं बचेगा।

एक महात्मा राजा से कुटिया के लिए जगह माँगने आये। पहले महात्मा एक किसान की झोपड़ी में रहते थे। खेत के किनारे बड़े आनन्द से रह रहे थे, कोई कमी ही नहीं थी। लोगों की बड़ी श्रद्धा थी लेकिन **'लोभ लहर की नदी बहत है, बूड़ोगे बिन पानी।'** एक दिन मन में लोभ पैदा हो गया– अपनी निजी कुटिया का तो आनन्द ही दूसरा है, यह तो किसान की है। दस बिस्वा जगह मिल जाती तो बढ़िया कुटिया बन जाती, बगीचा लग जाता। महात्मा ने सोचा– राजा दान दिया ही करते हैं, तो राजा के पास गये।

राजा ने कहा– कहिए महाराज! क्या चाहिए? महात्मा बोले– कुटीर की जगह। राजा बोले– बोलिए, कितनी जगह चाहिए?

अब महात्मा निर्णय न कर पावें, कितनी चाहिए। आये तो थे दस बिस्वा लेने, पर वह फलाना महात्मा दो बीघा लेकर जा रहा है, मैं भी दो बीघा माँग लूँ क्या? राजा ने महात्माजी को आगे-पीछे होते देखा तो कहा–

आप अभी चलना आरम्भ करें, शाम तक चलकर जितनी परिक्रमा कर लेंगे उतनी जगह आपकी।

जब तक राजा देख रहे थे तो महात्मा आहिस्ते-आहिस्ते चले, फिर लगे दौड़ लगाने। राजा ने पीछे दो घुड़सवार लगा दिया। अब महात्मा ने गति पकड़ लिया मैराथन के धावक की तरह, बज गया दो, घुड़सवार बोले– अरे महाराज! लौट चलो नहीं तो लौट भी नहीं पाओगे। महात्मा बोले– यह जो साल वृक्ष हैं, इसके वन को जरा घेर लेने दो। कुटिया जब बनेगी तो यह जो बड़े-बड़े साल वृक्ष हैं, बड़ेरी-धरनी डालने के लिए काम देंगे। महात्मा लगे जंगल घेरने।

फिर घुड़सवार बोले– महाराज, अब तो लौट चलो। महाराज बोले– आगे जो झील दिखाई दे रहा है, इसको भी जरा घेर लेने दो। जब खेती होगी तो यह सिंचाई में काम देगा। महात्मा लगे झील की परिक्रमा करने। घुड़सवार बोले– ल्यो, अब पहुँच भी नहीं पाओगे। जब-जब प्यास लगे तो घुड़सवार पानी पिला दिया करें।

फिर महात्मा किले की ओर चले। जब राजा थोड़ी ही दूर रह गये तो चक्कर खाकर बाबाजी गिर पड़े। जब पानी का छींटा दिया तो थोड़ा होश आया, फिर चले, फिर गिर पड़े। राजा ने कहा– पकड़कर लाओ। तो पकड़कर, पानी का छींटा देते, घसीटकर राजा तक लाये। ले तो आये लेकिन जहाँ छोड़ा तो बाबाजी वहीं गिर गये और प्राण-पखेरू उड़ गये। राजा ने कहा– ओह! सूर्योदय से सूर्यास्त तक दौड़ लगाते हैं, और जगह चाहिए साढ़े तीन-चार हाथ। वहीं गड्ढा खोदकर उनकी समाधि बनवा दिया, साढ़े तीन-चार हाथ जगह में।

उदय से अस्त तक मनुष्य जगह मापता है, जन्म से मृत्युपर्यन्त जगह मापता है; और जगह चाहिए साढ़े तीन हाथ। तो–

लोभ लहर की नदी बहत है, बूड़ोगे बिन पानी।।
जियरा तुम जइहो हम जानी।।

सरभंग आश्रम से जब भगवान राम आगे बढ़े तो-

अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया।।

(मानस, 3/8/6)

भगवान को बड़ी दया लगी, बोले– अरे, ये नर-कंकालों का पहाड़ कैसा? हिमालय देखा, अरावली देखा, ऐसा पहाड़ हमने कभी नहीं देखा! तो ऋषि बोले– भगवन्! आप जानते हुए भी पूछ रहे हैं।

निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए।।

(मानस, 3/8/8)

निशाचरों ने सम्पूर्ण मुनियों को खा लिया।

भगवान की आँखों में अश्रु छलक आये, प्रतिज्ञा किया कि-

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह।। (मानस, 3/9)

मैं पृथ्वी को निशाचरों से हीन कर दूँगा।

सब मुनियों के आश्रम में जा-जाकर सुख दिया। जब रामजी अत्रि आश्रम में पहुँचे, जब ऋषियों ने सुना कि भगवान राम अत्रि आश्रम में पहुँचे हैं, जंगलों से ऋषि आये, बोले– भगवन्! अन्धेरे में राक्षस आकर छिप जाते हैं, किसी को क्रिया-कर्म से, साधना से, इन्द्रिय-संयम से, शयन-जागरण से असावधान पाते हैं उसको घसीटकर ले जाते हैं, मारकर खा जाते हैं। बड़ा संकट है भगवन्! और जो क्रिया-कर्म से, इन्द्रिय-संयम से, शयन-जागरण से, मनोनिग्रह से, साधना से सावधान है, उस पर उन असुरों का वश नहीं चलता।

जब अगस्त्य आश्रम में पहुँचे तो अगस्त्य ने कहा– राम! तुम्हारे वनवास के केवल चार वर्ष बाकी हैं, यहीं रहो, तुम्हें सारी सुविधा मिलेगी। रामजी बोले– प्रभो! आप तो मेरा उद्देश्य जानते ही हैं। अगस्त्य ध्यानस्थ हो गये और फिर बोले– ओह! तुम निशाचरों का वध करना चाहते हो, हमारे आश्रम

में निशाचर आते ही नहीं। यहाँ कोई झूठ नहीं बोलता, यहाँ क्रिया-कर्म से, समय-सारिणी से, शयन-जागरण से, इन्द्रिय-संयम, मनोनिग्रह से, साधना की विधि से कोई असावधान नहीं है, भली प्रकार पालन करते हैं इसलिए असुर यहाँ नहीं आते। वहाँ असावधान थे। जिसको असावधान पाते थे, उसको घसीटकर ले जाते थे, मारकर खा लेते रहे। यहाँ कोई असावधान नहीं है इसलिए उनको खुराक ही नहीं मिलती। यहाँ आये तो भूखे मर जायँ।

सुतीक्ष्ण आश्रम में जब रामजी पहुँचे तो सुतीक्ष्ण को दर्शन दिया और कहा– ऋषिवर! मैं यहाँ ऋषियों का दर्शन करना चाहता हूँ। सुतीक्ष्ण बोले– राम! आप अवश्य जायं, वापस इस पगडण्डी से चले जायँ, यहाँ हजारों आश्रम आपको वनप्रान्त में मिलेंगे, किन्तु लौटकर यहाँ वापस आना, फिर आगे बढ़ना, तो मैं आपको आगे रास्ता बताऊँगा। राम जब गये तो किसी आश्रम में तीन महीना, छः महीना, नौ महीना निवास करते हुए आगे बढ़े। जहाँ असुरों का उत्पात था, उनका वध करते हुए, आश्रमों को असुरों से निरापद करते हुए आगे बढ़ते गये।

लौटकर जब सुतीक्ष्ण आश्रम में वापस आये तो वनवास काल के दस वर्ष पूरे हो गये थे। वहाँ के आश्रमीय ऋषि लोग रामजी की सेवा करते थे। कुछ महापुरुष ऐसे थे जिनके ऊपर असुरों की शक्ति ही नहीं काम कर रही थी, जैसे– अगस्त्य, सरभंग, अत्री, सुतीक्ष्ण इत्यादि। अगस्त्य ने जंगल को निरापद कर दिया और अगस्त्य के ही बाण और धनुष से रावण मारा गया।

महापुरुष लोग अपनी तपस्या में अनुरक्त थे। रामजी गये, वो जानते थे कि प्रभु पधारेंगे कल्याण ज्यादा होगा, क्षमता होते हुए भी प्रभु की प्रतीक्षा करते रहे। रावण के समय में जो भजन करे वही दुष्ट, उसी को सजा दो। पूरी फोर्स भेज दिया था, चौदह हजार निशाचरों के साथ खर-दूषण को और अपनी बहन सूर्पनखा को भेज दिया, बोला– वहीं छानो-घोंटो। इन गरीबों को क्यों सताते हो, महात्माओं को छानो-घोंटो। राम-राम-राम जाप कर नाक में दम कर रखा है।

आजकल 'भगवान है ही नहीं' घोषित कर दिया, 'धर्म है ही नहीं' घोषित कर दिया, 'हिन्दू तो है ही नहीं' घोषित कर दिया, 'गुरु है ही नहीं' घोषित कर दिया, 'शास्त्र है ही नहीं' घोषित कर दिया, 'हिन्दुओं के पास एकता का कोई सूत्र नहीं है' घोषित कर दिया। अब धर्मविहीन, शास्त्रविहीन, एकताविहीन, संगठनविहीन एक समुदाय भटक रहा है, आओ ले जाओ। करोड़ों धर्मगुरु हैं, किसी ने उत्तर नहीं दिया। उसका कारण ये भी एक हो सकता है, दो-एक हजार वर्ष से तो घड़ी-घंटा बजाने को धर्म कह रहे हैं, धर्म की व्याख्या आवे कहाँ से। तुलसीदासजी ने सही व्याख्या दी है कि-

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।

(मानस, 7/126/1-2)

वह धर्म का विशेषज्ञ है, धर्म का मर्मज्ञ है। राम के चरणों में जिसका मन अनुरक्त है, वही धर्मज्ञ है, गुणी है, ज्ञाता है, पण्डित है, दानदाता है। इसलिए भजन एक परमात्मा का।

।। ॐ श्रीसद्गुरुदेव भगवान की जय ।।